इस्लामी आन्दोलन
के
नैतिक आधार

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी

विषय-सूची

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है।"

इस्लामी आन्दोलन की अख़लाक़ी बुनियादें

(यह मौनाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०) की एक तक़रीर है, जिसमें बड़ी तफ़सील से तहरीके-इस्लामी की बुनियादों और कारकुनों की असल ज़िम्मेदारियों को बयान किया गया है।)

दोस्तो और हाज़िरीन! जैसा कि आपको मालूम है, हमारी जिद्दो-जुहद का आख़िरी मक़सद "इनक़िलाबे-इमामत" है। यानी दुनिया में हम जिस आख़िरी मंज़िल तक पहुँचना चाहते हैं वह यह है कि दुराचारी और बदकारों का नेतृत्व व रहनुमाई ख़त्म होकर इमामते-सालिहा का निज़ाम (ईश्वरीय मार्गदर्शित नेतृत्व) क़ायम हो। इसी सबसे बड़े मक़सद के लिए कोशिश और संघर्ष को हम दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की रिज़ा हासिल करने का ज़रिआ समझते हैं।

यह चीज़ जिसे हमने अपना मक़सद ठहराया है, अफ़सोस है कि आज उसकी अहमियत से मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम सभी ग़ाफ़िल हैं। मुसलमान सिर्फ़ इसको सियासी मक़सद समझते हैं और उनको इस बात का कुछ एहसास नहीं है कि दीन में इसकी क्या अहमियत है। ग़ैर-मुस्लिम कुछ तआसुब (पक्षपात) की वजह से और कुछ नावाक़फ़ियत (अज्ञानता) की वजह से इस हक़ीक़त को जानते ही नहीं कि वास्तव में दुराचारी और बदकारों की इमामत (नेतृत्व) ही मानव जाति की मुसीबतों की जड़ है और इनसान की भलाई का सारा दारोमदार सिर्फ़ इस बात पर है कि दुनिया के मामलों की बागडोर नेक (सदाचारी) लोगों के हाथों में हो। आज दुनिया में जो बड़ा बिगाड़ आया है, जो ज़ुल्म और ज़्यादती हो रही है, इनसानी अख़लाक़ में जो आलमगीर (विश्वव्यापी) बिगाड़ देखने को मिल रहा है, मानव-संस्कृति व अर्थव्यवस्था और राजनीति की रग-रग में जो ज़हर फैल चुका है, ज़मीन के तमाम संसाधन और इनसानी ज्ञान को प्राप्त करनेवाली

सारी शक्तियाँ, जिस तरह इनसान की उन्नति व भलाई के बजाय उसकी तबाही के लिए इस्तेमाल हो रही हैं, उन सबकी ज़िम्मेदारी अगर किसी चीज़ पर है तो वह सिर्फ़ यही है कि दुनिया में चाहे नेक लोगों और शरीफ़ इनसानों की कमी न हो मगर दुनिया के मामलात उनके हाथ में नहीं हैं, बल्कि ख़ुदा से फिरे हुए और माद्दापरस्ती (भौतिकतावादी) व बद-अख़लाक़ी में डूबे हुए लोगों के हाथों में है। अब अगर कोई शख़्स दुनिया का सुधार चाहता हो और बिगाड़ को सुधार से, अशान्ति को शान्ति से, दुराचार को सदाचार से और बुराइयों को भलाइयों से बदलने की ख़ाहिश रखता हो तो उसके लिए सिर्फ़ नेकियों की नसीहतें करना, ख़ुदापरस्ती के उपदेश देना और अच्छे आचरण की शिक्षा देना ही काफ़ी नहीं है, बल्कि उसका फ़र्ज़ है कि इनसानों में जितने नेक लोग उसको मिल सकें उन्हें एकजुट कर वह उनकी सामूहिक ताक़त को खड़ा करे, जिससे संस्कृति की बागडोर दुराचारियों से छीनी जा सके और इमामत (नेतृत्व) के निज़ाम में बदलाव किया जा सके।

बागडोर की अहमियत

इनसानी ज़िन्दगी की समस्याओं की जिसको थोड़ी-सी भी सूझ-बूझ हासिल हो वह इस हक़ीक़त से बेख़बर नहीं रह सकता कि इनसानी मामलों के बनाव और बिगाड़ का आख़िरी फ़ैसला जिस मसले पर टिका है वह यह सवाल है कि इनसानी मामलों की बागडोर किसके हाथ में है। जिस तरह गाड़ी हमेशा उसी दिशा में चला करती है जिस दिशा में ड्राइवर उसे ले जाना चाहता है और दूसरे लोग जो गाड़ी में सवार हों चाहें या न चाहें उसी दिशा में सफ़र करने के लिए मजबूर होते हैं। इसी तरह मानव-संस्कृति की गाड़ी भी उसी दिशा में सफ़र किया करती है, जिस दिशा में वे लोग जाना चाहते हैं जिनके हाथ में संस्कृति की कमान होती है। ज़ाहिर है कि पृथ्वी के सारे संसाधन जिनके नियंत्रण में हों, सत्ता और शक्ति की कमान जिनके हाथों में हों, आम इनसानों की ज़िन्दगी जिनके दामन से जुड़ी हो, विचारों और दृष्टिकोण को बनाने और ढालने के ज़रिये जिनके क़ब्ज़े में हों, व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण और सामूहिक व्यवस्था को बनाने और नैतिक मूल्यों के

निर्धारण का अधिकार जिन्हें हासिल हो, उनकी रहनुमाई और फ़रमाँरवाई के तहत रहते हुए इनसानियत सामूहिक तौर पर उस राह पर चलने से किसी तरह रुकी नहीं रह सकती, जिसपर वे उसे चलाना चाहते हैं। ये रहनुमा व शासक अगर ख़ुदापरस्त और नेक लोग हों तो ज़िन्दगी की पूरी व्यवस्था ख़ुदापरस्ती और ख़ैर व भलाई पर चलेगी, बुरे लोग भी अच्छे बनने पर मजबूर होंगे, भलाइयाँ फैलेंगी और बुराइयाँ अगर मिटेंगी नहीं तो कम-से-कम परवान भी न चढ़ सकेंगी। लेकिन अगर रहनुमाई, नेतृत्व और शासन की बागडोर उन लोगों के हाथ में हो जो ख़ुदा से दूर और दुराचार व बदकारी में लिप्त हों तो अपने-आप ही यह सारी जीवन व्यवस्था ख़ुदा से बग़ावत और ज़ुल्म व दुराचारण पर चलेगी। विचार और दृष्टिकोण, ज्ञान व साहित्य, राजनीति व अर्थव्यवस्था, सभ्यता और समाज, नैतिकता व व्यवहार, इनसाफ़ और क़ानून, सबमें संयुक्त रूप से बिगाड़ पैदा हो जाएगा। बुराइयों का बोलबाला होगा। भलाइयों को ज़मीन अपने अन्दर जगह देने से और हवा उनको पानी और भोजन देने से इनकार कर देंगे और ख़ुदा की ज़मीन ज़ुल्म व ज़्यादती से लबरेज़ होकर रहेगी। ऐसी व्यवस्था में बुराई की राह पर चलना आसान और भलाई की राह पर चलना तो दूर उसपर क़ायम रहना भी मुश्किल होता है। जिस तरह आपने किसी बड़े मजमे में देखा होगा कि सारा मजमा जिस तरफ़ जा रहा है उस तरफ़ चलने के लिए तो आदमी को कुछ ताक़त लगाने की भी ज़रूरत नहीं होती बल्कि वह मजमे की क़ुव्वत से ख़ुद ही उस तरफ़ बढ़ता चला जाता है, लेकिन अगर मजमे की विपरीत दिशा में कोई चलना चाहे तो वह बहुत ज़ोर लगाकर भी मुश्किल ही से एक-आध क़दम आगे बढ़ सकता है और जितने क़दम वह आगे चलता है मजमे का एक ही रेला उसे कई गुना पीछे धकेल देता है। इसी तरह सामूहिक व्यवस्था भी जब बदकारों के नेतृत्व में कुफ़्र (अधर्म) और दुराचार के रास्तों पर चल पड़ती है तो व्यक्ति और गरोहों (समूहों) के लिए ग़लत राह पर चलना तो इतना आसान हो जाता है कि ख़ुद से उन्हें उसपर चलने के लिए कोई ज़ोर लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती लेकिन अगर वे इसके ख़िलाफ़ चलना चाहें तो अपने जिस्म व जान का सारा ज़ोर लगाने के बाद भी एक-आध क़दम ही

भलाई के रास्ते पर आगे बढ़ सकते हैं और उनकी दख़ल-अंदाज़ी के बावुजूद भी सामूहिक बल उन्हें धकेलकर मीलों पीछे हटा ले जाता है।

यह बात जो मैं अर्ज़ कर रहा हूँ यह अब कोई ऐसी नज़री हक़ीक़त नहीं रही है जिसे साबित करने के लिए दलीलों की ज़रूरत हो बल्कि घटनाओं ने इसे एक खुली हक़ीक़त बना दिया है, जिससे कोई भी आँख रखनेवाला इनकार नहीं कर सकता। आप खुद ही देख लें कि पिछले सौ वर्षों में आपके अपने मुल्क में किस तरह विचार और दृष्टिकोण बदले हैं, सलीक़ा और स्वभाव बदले हैं, सोचने के अंदाज़ और देखने के तरीक़े बदले हैं, तहज़ीब और अख़लाक़ के मेयार (कसौटी) और क़द्रो-क़ीमत के पैमाने बदले हैं और कौन-सी चीज़ रह गई है जो बदल न गई हो। यह सारा बदलाव जो देखते-देखते आपकी इसी सरज़मीन में हुआ, इसकी अस्ली वजह आख़िर क्या है? क्या आप इसकी वजह इसके सिवा और कुछ बता सकते हैं कि जिन लोगों के हाथ में बागडोर थी और रहनुमाई व शासन की कमान जिनके हाथों में थी, उन्होंने पूरे मुल्क के अख़लाक़, ज़ेहनों (समझ), नफ़सियात (मनोविज्ञान), मामलात और संस्कृति की व्यवस्था को उस साँचे में ढालकर रख दिया जो उनकी अपनी पसन्द के मुताबिक़ थी? फिर ज़िन ताक़तों ने इस बदलाव का विरोध किया, ज़रा नाप कर देखिए कि उन्हें कामयाबी कितनी मिली और नाकामी कितनी। क्या यह सच नहीं कि कल जो विरोध के आन्दोलन के पेशवा थे आज उनकी औलाद वक़्त की धार में बही चली जा रही है और उनके घरों तक में भी वही सब कुछ पहुँच गया है जो घरों के बाहर फैल चुका था? क्या यह सच नहीं हुआ है कि निहायत पाकीज़ा मक़सद रखनेवाले मज़हबी पेशवाओं तक की नस्ल से वे लोग उठ रहे हैं जिन्हें खुदा के वुजूद और वह्य (प्रकाशना) व रिसालत के इमकान में भी शक है? इस अवलोकन और तजुर्बे के बाद भी क्या किसी को इस हक़ीक़त को स्वीकार करने में संकोच हो सकता है कि इनसानी ज़िन्दगी की समस्याओं में अस्ल निर्णायक मसला हुकूमत की बागडोर का मसला है? और यह अहमियत इस मसले ने कुछ आज ही इख़्तियार नहीं की है बल्कि हमेशा से इसकी यही अहमियत रही है। "अन्नासु अला दीनी मुलुकिहिम" (लोग

अपने हाकिमों के तरीक़े पर होते हैं) बहुत पुरानी कहावत है। और इसी आधार पर हदीस में क़ौमों के बनाव और बिगाड़ का ज़िम्मेदार उनके आलिमों और अमीरों को क़रार दिया गया है, क्योंकि लीडरशिप और हुकूमत की बागडोर उन्हीं के हाथ में होती है।

शालीन नेतृत्व की व्यवस्था दीन का वास्तविक उद्देश्य

इस खुलासे के बाद यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि दीन में इस मसले की क्या अहमियत है। ज़ाहिर है कि अल्लाह का दीन अव्वल तो यह चाहता है कि लोग मुकम्मल तौर से हक़ (सत्य) के बन्दे बनकर रहें और उनकी गरदनें अल्लाह की बन्दगी के सिवा किसी और के सामने न झुकें। फिर वह चाहता है कि अल्लाह ही का क़ानून लोगों की ज़िन्दगी का क़ानून बनकर रहे। फिर उसकी माँग यह है कि ज़मीन से बिगाड़ ख़त्म हो, उन ख़राबियों को जड़ से उखाड़ फेंका जाए जो ज़मीन पर अल्लाह के ग़ज़ब की वजह होती हैं और उन भलाइयों और अच्छाइयों को बढ़ावा दिया जाए जो अल्लाह को पसन्द है। इन तमाम मक़सदों में से कोई मक़सद भी इस तरह पूरा नहीं हो सकता कि मानव-जाति की रहनुमाई और नेतृत्व और मानवीय मामलों की बागडोर बेदीन और गुमराहों के हाथों में हो और सच्चे दीन को माननेवाले उनके मातहत रहकर उनकी दी हुई रिआयतों और गुंजाइशों से फ़ायदा उठाते हुए खुदा की याद में लगे रहें। ये मक़सद तो लाज़िमी तौर पर इस बात की माँग करते हैं कि तमाम भलाई के काम करनेवाले और नेक लोग जो अल्लाह की रिज़ा चाहते हों इज्तिमाई (सामूहिक) ताक़त पैदा करें और सर-धड़ की बाज़ी लगाकर एक ऐसा निज़ामे-हक़ (इस्लामी व्यवस्था) क़ायम करने की कोशिश करें जिसमें इमामत व रहनुमाई और नेतृत्व व शासन की व्यवस्था की बागडोर नेक मुसलमानों के हाथों में हो। इस चीज़ के बग़ैर वह मक़सद हासिल ही नहीं हो सकता है जो दीन का अस्ल मक़सद है।

इसी लिए दीन में बेहतर और अच्छे नेतृत्व और हक़ के निज़ाम को क़ायम करने को मक़सदी अहमियत हासिल है और इस चीज़ से ग़फ़लत

बरतने के बाद कोई अमल ऐसा नहीं हो सकता जिससे इनसान अल्लाह तआला की रिज़ा हासिल कर सके। ग़ौर कीजिए, आख़िर क़ुरआन और हदीस में जमाअत को ज़रूरी क़रार क्यों दिया है और सुनने व इताअत करने पर इतना ज़ोर क्यों दिया गया है कि अगर कोई शख़्स जमाअत से अलग हो जाए तो उससे जंग करना वाजिब है, चाहे वह कलिमाए-तौहीद का माननेवाला और नमाज़ का पाबन्द ही क्यों न हो? क्या इसकी वजह यह और सिर्फ़ यही नहीं है कि नेक लोगों का नेतृत्व और हक़ के निज़ाम की स्थापना दीन का हक़ीक़ी मक़सद है और इस मक़सद का हासिल होना सामूहिक ताक़त पर निर्भर है। इसलिए जो शख़्स सामूहिक ताक़त को नुक़सान पहुँचाता है वह इतना बड़ा जुर्म करता है जिसकी भरपाई न नमाज़ से हो सकती है और न तौहीद के इक़रार से? फिर देखिए कि आख़िर इस दीन में जिहाद को इतनी अहमियत क्यों दी गई है कि उससे जी चुराने और मुँह मोड़नेवालों पर क़ुरआन मजीद निफ़ाक़ (बिगाड़ पैदा करने) का हुक्म लगाता है? जिहाद हक़ के निज़ाम की कोशिश का ही तो दूसरा नाम है और क़ुरआन इसी ज़िहाद को वह कसौटी क़रार देता है, जिसपर आदमी का ईमान परखा जाता है। दूसरे शब्दों में, जिसके दिल में ईमान होगा वह न तो झूठ के निज़ाम की हुकूमत पर राज़ी हो सकता है और न हक़ के निज़ाम को क़ायम करने की जिद्दो-जुहद में जान-माल लगाने से इनकार कर सकता है। इस मामले में जो शख़्स कमज़ोरी दिखाए उसका ईमान ही संदिग्ध (शक के घेरे में) है। फिर भला कोई दूसरा अमल उसे क्या फ़ायदा पहुँचा सकता है?

इस वक़्त इतना मौक़ा नहीं है कि मैं आपके सामने इस मसले की पूरी तफ़सील बयान करूँ। मगर जो कुछ मैंने अर्ज़ किया है वह इस हक़ीक़त को ज़ेहन में बिठा लेने के लिए बिल्कुल काफ़ी है कि इस्लाम के दृष्टिकोण से नेक नेतृत्व का क़याम मर्कज़ी और मक़सदी अहमियत रखता है, जो शख़्स इस दीन पर ईमान लाया हो और उसका काम इतने ही पर ख़त्म नहीं हो जाता कि अपनी ज़िन्दगी को जितना हो सके इस्लाम के साँचे में ढालने की कोशिश करे, बल्कि उसके ईमान का तक़ाज़ा यह है कि वह अपनी तमाम

कोशिशों को इस एक मक़सद पर केन्द्रित कर दे कि बागडोर इनकारियों और दुराचारियों के हाथों से निकलकर नेक लोगों के हाथ में आए और वह हक़ का निज़ाम क़ायम हो जो अल्लाह तआला की मरज़ी के मुताबिक़ दुनिया की व्यवस्था को सुधारे और दुरुस्त रखे। चूँकि यह बड़ा मक़सद सामूहिक कोशिश के बग़ैर हासिल नहीं हो सकता इसलिए नेक लोगों की एक ऐसी जमाअत का वुजूद ज़रूरी है जो ख़ुद हक़ के उसूलों की पाबन्द हो और हक़ के निज़ाम को क़ायम करने, बाक़ी रखने और ठीक-ठाक चलाने के सिवा दुनिया में कोई और स्वार्थ न रखे। ज़मीन पर अगर एक ही आदमी मोमिन (ईमानवाला) हो तब भी उसके लिए यह ठीक नहीं है कि अपने आपको अकेला पाकर और संसाधनों की कमी देखकर हुए झूठ की हुकूमत पर राज़ी हो जाए या अहवनुल-बलय्यतैन (दो बुराइयों में से एक हल्की बुराई) के शरई बहाने तलाश करके कुफ़्र व दुराचार की सत्ता के मातहत कुछ आधी-पौनी मज़हबी ज़िन्दगी का सौदा चुकाना शुरू कर दे, बल्कि इसके लिए सीधा और साफ़ रास्ता सिर्फ़ यही एक है कि ख़ुदा के बन्दों को उस तरीक़े की ज़िन्दगी की तरफ़ बुलाए जो ख़ुदा को पसन्द है। फिर अगर कोई उसकी बात सुनकर न दे तो उसका सारी उम्र सिराते-मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) पर खड़े होकर लोगों को पुकारते रहना और पुकारते-पुकारते मर जाना इससे लाख दर्जा बेहतर है कि वह अपनी ज़बान से वे सदाएँ बुलन्द करने लगे जो ज़लालत में भटकी हुई दुनिया को पसन्द हों, और उन राहों पर चल पड़े जिनपर अवज्ञाकारियों के नेतृत्व में दुनिया चल रही हो। और अगर अल्लाह के कुछ बन्दे उसकी बात सुनने को तैयार हो जाएँ तो उसके लिए ज़रूरी है कि उनके साथ मिलकर एक जत्था (गरोह) बनाए और यह जत्था अपनी तमाम सामूहिक शक्तियाँ इस बड़े मक़सद के लिए जिद्दो-जुहद करने में ख़र्च कर दे जिसका मैं ज़िक्र कर रहा हूँ।

हज़रात! मुझे ख़ुदा ने जो थोड़ा बहुत इल्म दिया है और क़ुरआन-हदीस के मुताले (अध्ययन) से जो कुछ समझ मुझे हासिल हुई है उससे मैं दीन का तक़ाज़ा यही कुछ समझा हूँ। यही मेरे नज़दीक अल्लाह की किताब की माँग है। यही अंबिया की सुन्नत है और मैं अपनी इस राय से हट नहीं सकता

जब तक कोई ख़ुदा की किताब और रसूल की सुन्नत ही से मुझपर साबित न कर दे कि दीन का यह तक़ाज़ा नहीं है।

नेतृत्व के सिलसिले में ख़ुदा की सुन्नत

अपनी कोशिश से इस मक़सद के समझ लेने के बाद अब हमें अल्लाह की उस सुन्नत को समझने की कोशिश करनी चाहिए जिसके तहत हम अपने इस मक़सद को पा सकते हैं। यह कायनात जिसमें हम रहते हैं, इसको अल्लाह तआला ने एक क़ानून पर बनाया है और उसकी हर चीज़ एक लगे-बँधे नियम पर चल रही है। यहाँ कोई कोशिश सिर्फ़ पाकीज़ा ख़ाहिश और अच्छी नीयतों की बिना पर कामयाब नहीं हो सकती और न सिर्फ़ पवित्रात्मा बुज़ुर्गों की बरकतों ही से कोई नतीजा निकाल सकता है, बल्कि उसके लिए उन शर्तों का पूरा होना ज़रूरी है जो ऐसी कोशिशों को फलदायी बनाने के लिए अल्लाह के क़ानून में तय है। आप अगर खेती करें तो आप चाहे कितने ही पवित्रात्मा इनसान हों और नमाज़ी और परहेज़गारी में कितना ही आगे बढ़े हुए क्यों न हों, बहरहाल आपका फेंका हुआ कोई बीज भी फल-फूल नहीं सकता जब तक आप अपनी खेती के काम में उस क़ानून की पाबन्दी का पूरा-पूरा ध्यान न रखें जो अल्लाह ने खेतों के फलने-फूलने के लिए तय कर दिया है। इसी तरह नेतृत्व की व्यवस्था का वह आन्दोलन भी, जो आपके सामने है, कभी सिर्फ़ दुआओं और पाक तमन्नाओं से कामयाब न हो सकेगा, बल्कि उसके लिए भी ज़रूरी है कि आप उस क़ानून को समझें और उसकी सारी शर्तें पूरी करें जिसके तहत दुनिया में इमामत क़ायम होती है, किसी को मिलती है और किसी से छिनती है। अगरचे इससे पहले भी मैं इस मज़मून को अपनी तक़रीरों और तहरीरों (लेखों) में इशारे के तौर पर बयान करता रहा हूँ लेकिन आज मैं उसे तफ़सील और व्याख्या के साथ पेश करना चाहता हूँ, क्योंकि यह वह विषय है जिसे पूरी तरह समझे बग़ैर हमारे सामने अपनी राहे-अमल साफ़ नहीं हो सकती।

इनसान की हस्ती (व्यक्तित्व) का जायज़ा लिया जाए तो मालूम होता है कि उसके अन्दर दो अलग हैसियतें पाई जाती हैं जो एक-दूसरे से अलग

भी हैं और एक-दूसरे से मिली-जुली भी। उसकी एक हैसियत तो यह है कि वह अपना एक भौतिक और जैविक अस्तित्व रखता है जिसपर वही नियम लागू होते हैं जो तमाम भौतिक दुनिया और जन्तुओं पर काम कर रहे हैं। इस वुजूद का दारोमदार उन उपकरणों और संसाधनों, उन भौतिक साधनों और उन प्राकृतिक स्थितियों पर है जिनपर दूसरी तमाम भौतिक और जैविक चीज़ों के क्रिया-कलाप (कार्य) निर्भर है। यह वुजूद जो कुछ कर सकता है भौतिक नियमों के तहत, उपकरणों और संसाधनों के द्वारा और भौतिक परिस्थियों के द्वारा अन्दर रहते हुए ही कर सकता है और उसके काम पर दुनिया के साधनों की तमाम शक्तियाँ अनुकूल या प्रतिकूल असर डालती हैं।

दूसरी हैसियत जो इनसान के अन्दर साफ़ नज़र आती है वह उसके इनसान होने या दूसरे शब्दों में एक अख़लाक़ी वुजूद होने की हैसियत है। यह अख़लाक़ी वुजूद भौतिकी के अधीन नहीं है, बल्कि उनपर एक तरह से हुकूमत करता है। यह ख़ुद इनसान के भौतिक व जैविक वुजूद को भी उपकरण के तौर पर इस्तेमाल करता है और बाहरी दुनिया के साधनों को भी अपने अधीन करने और उनसे काम लेने की कोशिश करता है। इसकी सहायक शक्तियाँ वे अख़लाक़ी ख़ूबियाँ हैं जो अल्लाह ने इनसान के अन्दर रखी हैं। और उनपर हुकूमत भी भौतिक क़ानूनों की नहीं बल्कि अख़लाक़ी क़ानूनों की है।

इनसानी तरक़्क़ी और गिरावट का दारोमदार अख़लाक़ पर है

ये दोनों हैसियतें इनसान के अन्दर मिली-जुली काम कर रही हैं और संयुक्त रूप से उसकी कामयाबी व नाकामी और उसकी तरक़्क़ी और गिरावट का दारोमदार माद्दी (भौतिक) और अख़लाक़ी दोनों क़िस्म की क़ुव्वतों पर है। वह न तो भौतिक और न ही अख़लाक़ी क़ुव्वत से बेनियाज़ हो सकता है। उसे तरक़्क़ी हासिल होती है तो दोनों के बल पर और वह गिरता है तो उसी वक़्त गिरता है जब दोनों ताक़तें उसके हाथ से जाती रहती हैं या उनमें वह दूसरों के मुक़ाबले में कमज़ोर हो जाता है। लेकिन अगर ग़ौर से देखा जाए तो मालूम होगा कि इनसानी ज़िन्दगी में अस्ली व निर्णायक

अहमियत अख़लाक़ी ताक़त की है, न कि भौतिक ताक़त की। इसमें शक नहीं कि भौतिक साधनों की प्राप्ति, भौतिक साधनों का इस्तेमाल और बाहरी साधनों की अनुकूलता भी कामयाबी के लिए ज़रूरी शर्त है, और जब तक इनसान आलमे-तबई (भौतिक जगत्) में रहता है यह शर्त किसी तरह ख़त्म नहीं हो सकती। मगर वह अस्ल चीज़ जो इनसान को गिराती और उठाती है और जिसे उसकी क़िस्मत के बनाने और बिगाड़ने में सबसे बढ़कर दख़ल हासिल है वह अख़लाक़ी ताक़त ही है। ज़ाहिर है कि हम जिस चीज़ की वजह से इनसान को इनसान कहते हैं वह उसकी शारीरिकता या जैविकता नहीं बल्कि अख़लाक़ियत है। आदमी दूसरी चीज़ों से जिस ख़ासियत के आधार पर अपनी पहचान रखता है वह यह नहीं है कि वह जगह घेरता है या साँस लेता है या बच्चे पैदा करता है, बल्कि उसकी वह ख़ास पहचान है जो उसे एक स्थाई नस्ल ही नहीं दुनिया में अल्लाह का ख़लीफ़ा बनाती है, वह इसका अख़लाक़ी इख़्तियार और अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी का हामिल होना है। बस जब अस्ल जौहरे-इनसानियत अख़लाक़ है तो यह मानना पड़ेगा कि अख़लाक़ियात ही को इनसानी ज़िन्दगी के बनाव और बिगाड़ में निर्णायक मक़ाम हासिल है और अख़लाक़ी क़ानून ही इनसान को उठाने और गिराने का अधिकार रखता है।

इस हक़ीक़त को समझ लेने के बाद जब हम अख़लाक़ियात की समीक्षा करते हैं तो वह उसूली तौर पर हमें दो बड़े विभागों में बँटी नज़र आती है— एक बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात और दूसरे इस्लामी अख़लाक़ियात।

बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात

बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात से मुराद वे ख़ूबियाँ हैं जिनपर इनसान के अख़लाक़ी वुजूद की बुनियाद टिकी है। इनमें वे तमाम ख़ूबियाँ शामिल हैं जो दुनिया में इनसान की कामयाबी के लिए ज़रूरी शर्त हैं, चाहे वह सही मक़सद के लिए काम कर रहा हो या ग़लत मक़सद के लिए। इन अख़लाक़ियात में इस सवाल का कोई दख़ल नहीं है कि आदमी ख़ुदा, वह्य, रसूल और आख़िरत को मानता है या नहीं, नफ़्स की पाकीज़गी और ख़ैर की

नीयत और नेक अमल करता है या नहीं, अच्छे मक़सद के लिए काम कर रहा है या बुरे मक़सद के लिए। चाहे किसी में ईमान हो या न हो, और उसकी ज़िन्दगी पाक हो या न हो, उसकी कोशिशों का मक़सद अच्छा हो या बुरा, जो शख़्स और जो गरोह भी अपने अन्दर वे ख़ूबियाँ रखता होगा, जो दुनिया में कायाबी के लिए ज़रूरी हैं, वह यक़ीनन कामयाब होगा और उन लोगों से आगे निकल जाएगा जो इन ख़ूबियों के लिहाज़ से उनके मुक़ाबले में कम होंगे।

मोमिन हो या ग़ैर मुस्लिम, नेक हो या बुरा, बुराई को दफ़ा करनेवाला हो या फ़ायदेमन्द, चाहे जो भी हो वह अगर कारगर इनसान हो सकता है तो सिर्फ़ उसी सूरत में जबकि उसके अन्दर इरादे की ताक़त और फ़ैसले की क़ुव्वत हो, अज़्म और हौसला, सब्र व साबित-क़दमी और मज़बूती हो, सहनशीलता और धैर्य हो, हिम्मत और बहादुरी हो, तैयार रहनेवाला और मेहनती हो, अपने मक़सद से मुहब्बत और उसके लिए हर चीज़ क़ुरबान कर देने का बल-बूता रखता हो, मुस्तैदी व एहतियात और मामले की समझ और दूरअन्देशी, हालात को समझनें और उनके मुताबिक़ अपने आपको ढालने और मुनासिब उपाय करने की क़ाबिलियत हो, अपने जज़्बात और होश व हवास और हैज़ानात पर क़ाबू हो और दूसरे इनसानों को मोहने और उनके दिलों में जगह बनाने और उनसे काम लेने की सलाहियत हो।

फिर यह ज़रूरी है कि उसके अन्दर वह शरीफ़ाना ख़ूबियाँ भी कुछ न कुछ मौजूद हों जो हक़ीक़त में जौहरे-आदमीयत हैं और जिनकी बदौलत आदमी का वक़ार व एतिबार दुनिया में क़ायम होता है। जैसे— ख़ुद्दारी, दरियादिली, रहम, हमदर्दी, इनसाफ़, दिल और निगाह की व्यापकता, सच्चाई, अमानत, रास्तबाज़ी, पासे-अहद (वादे का पक्का होना), माक़ूलियत, एतिदाल, शाइस्तगी, पाकी व नज़ाफ़त और ज़ेहन व नफ़्स की मज़बूती।

ये ख़ूबियाँ अगर किसी क़ौम या गरोह के ज़्यादातर लोगों मे मौजूद हों तो यह समझिए कि उसके पास इनसानियत की वह पूँजी मौजूद है जिससे एक ताक़त और संगठन वुजूद में आ सकता है। लेकिन यह पूँजी मिलकर एक मज़बूत, टिकाऊ और कारगर सामूहिक ताक़त नहीं बन सकती है जब

तक कि कुछ दूसरी अख़लाक़ी ख़ूबियाँ भी उसकी मदद पर उतर न आएँ। जैसे कि तमाम या अधिकतर लोग किसी सामूहिक मक़सद पर एक राय हों और उस मक़सद को अपनी निजी ज़रूरत बल्कि अपनी जान, माल और औलाद से भी अधिक अहमियत दें। उनके अन्दर आपस की मुहब्बत और हमदर्दी हो। उन्हें मिलकर काम करना आता हो। वे अपनी ख़ुदी और ख़्वाहिशात को कम-से-कम उस हद तक क़ुरबान कर सकें, जो मौज़ू कलाम की कोशिशों के लिए ज़रूरी है। वे ग़लत और सही रहनुमा में फ़र्क़ कर सकते हों और जाँच परख किए हुए लोगों को ही अपना रहनुमा बनाएँ। उनके रहनुमाओं में इख़लास और बेहतर तदबीर और रहनुमाई की दूसरी ज़रूरी ख़ूबियाँ मौजूद हों और ख़ुद क़ौम या जमाअत भी अपने रहनुमाओं की इताअत करना जानती हो। उनपर भरोसा रखती हो, और अपने तमाम ज़ेहनी, जिस्मानी और भौतिक संसाधन उनके अधिकार में देने को तैयार हो और पूरी क़ौम के अन्दर ऐसी ज़िन्दा और हस्सास (संवेदनशील) राय आम पाई जाती हो जो किसी ऐसी चीज़ को अपने अन्दर पनपने न दे जो सामूहिक भलाई के लिए नुक़सानदेह हो।

ये हैं वे अख़लाक़ियात जिनको मैं "बुनियादी अख़लाक़ियात" के शब्द से ताबीर करता हूँ; क्योंकि हक़ीक़त में यही अख़लाक़ी ख़ूबियाँ इनसान की अख़लाक़ी ताक़त का अस्ली स्रोत हैं और इनसान किसी मक़सद के लिए भी दुनिया में कामयाब कोशिश नहीं कर सकता जब तक इन गुणों का ज़ोर उसके अन्दर मौजूद न हो। इन अख़लाक़ियात की मिसाल ऐसी है जैसे फ़ौलाद, कि वह अपने आप में मज़बूती और दृढ़ता का गुण रखता है और अगर कोई कारगर हथियार बन सकता है तो इसी से बन सकता है। यह बात और है कि वह ग़लत मक़सद के लिए इस्तेमाल हो या सही मक़सद के लिए। आपके सामने सही मक़सद हो तब भी आपके लिए फ़ायदेमन्द वही हथियार हो सकता है, जो फ़ौलाद से बना हो, न कि सड़ी-गली फुस-फुसी लकड़ी से जो एक ज़रा से बोझ और मामूली सी चोट को भी सहन न कर सके। यही वह बात है जिसे नबी (सल्ल०) ने इस हदीस में बयान फ़रमाया है—

"तुममें जो लोग जाहिलियत में अच्छे थे, वही इस्लाम में भी अच्छे हैं।"

यानी जाहिलियत के ज़माने में जो लोग अपने अन्दर क़ाबिलियत का गुण रखते थे वही इस्लाम के दौर में बड़े काम के साबित हुए। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि उनकी क़ाबिलियत पहले ग़लत राहों में काम आ रही थीं और इस्लाम ने आकर उन्हें सही राह पर लगा दिया। मगर नाकारा इनसान न जाहिलियत के किसी काम के थे, न इस्लाम के। नबी (सल्ल॰) को अरब में जो ज़बरदस्त कामयाबी हासिल हुई और जिसके असरात थोड़ी ही मुद्दत गुज़रने के बाद दरियाए-सिन्ध से लेकर अटलांटिक के किनारे तक दुनिया के एक बड़े हिस्से ने महसूस कर लिए। उसकी वजह यही तो थी कि आपको अरब में बेहतरीन इनसानी मवाद मिल गया था, जिसके अन्दर कैरेक्टर की ज़बरदस्त ताक़त मौजूद थी। अगर, खुदा न करे, आपको कम हिम्मत, इरादे के कमज़ोर और नाक़ाबिले-एतिमाद लोगों की भीड़ मिल जाती तो क्या फिर भी वे नतीजे निकल सकते थे?

इस्लामी अख़लाक़ियात

अब अख़लाक़ियात के दूसरे शोबे को लीजिए जिसे मैं "इस्लामी अख़लाक़ियात" का नाम दे रहा हूँ। यह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात से अलग कोई चीज़ नहीं है, बल्कि इसी का शुद्ध रूप और इसी की पूर्ति करनेवाला है।

इस्लाम का पहला काम यह है कि वह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात को एक सही मरकज़ (केन्द्र) और महवर (धुरी) मुहैया करा देता है जिससे वाबस्ता होकर वह मुकम्मल भलाई बन जाते हैं। अपनी शुरुआती सूरत में तो ये अख़लाक़ियात एक ताक़त हैं जो ख़ैर भी हो सकती है और शर भी, जिस तरह तलवार का हाल है कि वह बस एक काट है जो डाकू के हाथ में जाकर ज़ुल्म का औज़ार भी बन सकती है और अल्लाह की राह में जिहाद करनेवालों के हाथ में जाकर भलाई की वजह भी बन सकती है। उसी तरह इन अख़लाक़ियात का भी किसी शख़्स या गरोह में होना अपने आप में ख़ैर

नहीं है, बल्कि इसका ख़ैर होना इस बात पर निर्भर है कि यह ताक़त सही राह में इस्तेमाल हो, और इसको सही राह पर लगाने की ख़िदमत इस्लाम अंजाम देता है। इस्लाम की तौहीद की दावत की ज़रूरी माँग यह है कि दुनिया की ज़िन्दगी में इनसान की तमाम कोशिशों और मेहनतों का और उसकी दौड़-धूप का मक़सद अल्लाह तआला की रज़ा हासिल करना हो, "खुदाया हमारी कोशिशें और सारी दौड़-धूप तेरी ही खुशनूदी के लिए है।" और इसका पूरा अमल और सोच का पूरा दायरा उन हदों से महदूद हो जाए जो अल्लाह ने उसके लिए मुक़र्रर कर दी हैं, "खुदाया, हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और तेरे ही लिए नमाज़ और सजदे करते हैं।" इस बुनियादी इस्लाह का नतीजा यह है कि वे तमाम बुनियादी अख़लाक़ियात, जिनका अभी मैंने आपसे ज़िक्र किया है, सही राह पर लग जाते हैं और वह क़ुव्वत जो इन अख़लाक़ियात की मौजूदगी से पैदा होती है बजाय इसके कि नफ़्स या ख़ानदान या क़ौम या मुल्क की तरक़्क़ी पर हर मुमकिन तरीक़े से ख़र्च हो, ख़ालिस हक़ की सरबुलन्दी पर सिर्फ़ जाइज़ तरीक़ों ही से ख़र्च होने लगती है। यही चीज़ उसको एक तन्हा क़ुव्वत के मरतबे से उठाकर एक भलाई और दुनिया के लिए एक रहमत बना देती है।

दूसरा काम जो अख़लाक़ के बाब (अध्याय) में इस्लाम करता है वह यह है कि वह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात को मज़बूत भी करता है और फिर उनके फ़ैलाव को बहुत हद तक बढ़ा देता है। मिसाल के तौर पर सब्र को लीजिए। बड़े से बड़े सब्र करनेवाले आदमी में भी जो सब्र दुनियावी ग़रज़ के लिए हो और जिसे शिर्क या भौतिकवाद की वैचारिक जड़ों से ग़िज़ा मिल रही हो, उसकी बरदाश्त और उसके सब्र और क़रार की बस एक हद होती है जिसके बाद वह घबरा उठता है। लेकिन जिस सब्र को तौहीद की जड़ से ख़ूराक मिले और जो दुनिया के लिए नहीं बल्कि अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए हो वह तहम्मुल, बरदाश्त और हिम्मत का अथाह ख़ज़ाना होता है। जिसे दुनिया की तमाम मुमकिन मुश्किलें मिलकर भी लूट नहीं सकतीं। फिर ग़ैर-मुस्लिम का सब्र बहुत ही महदूद क़िस्म का होता है। उसका हाल यह होता है कि अभी तो गोलों और गोलियों की बौछार में बहुत मज़बूती से डटा

हुआ था और अभी जो ख़िदमाते-शहवानी (काम-तृप्ति) की तसल्ली का कोई मौक़ा सामने आया तो इनसानी ख़ाहिश की एक मामूली तहरीक के मुक़ाबले में भी न ठहर सका। लेकिन इस्लाम सब्र को इनसान की पूरी ज़िन्दगी में फैला देता है और उसे सिर्फ़ कुछ ख़ास क़िस्म के ख़तरों, मुसीबतों और परेशानियों ही के मुक़ाबले में नहीं बल्कि हर उस लालच, हर उस ख़ौफ़, हर उस अन्देशे और हर उस ख़ाहिश के मुक़ाबले में ठहराव की एक ज़बरदस्त ताक़त बना देता है जो आदमी को सीधे रास्ते से हटाने की कोशिश करे। हक़ीक़त में इस्लाम मोमिन की पूरी ज़िन्दगी को एक सब्रवाली ज़िन्दगी बनाता है जिसका बुनियादी उसूल यह है कि उम्र भर सही रवैये पर क़ायम रहो चाहे इसमें कितने ही ख़तरे और नुक़सान और परेशानियाँ हों, और इसकी ज़िन्दगी में उसका कोई फ़ायदेमन्द नतीजा निकलता नज़र न आए, और कभी सोच व अमल की बुराई इख़्तियार न करो चाहे फ़ायदों और उम्मीदों का कैसा ही ख़ुशनुमा सब्ज़ बाग़ तुम्हारे सामने लहलहा रहा हो। ये आख़िरत के क़तई नतीजों की उम्मीद में दुनिया की सारी ज़िन्दगी में बदी से रुकना और ख़ैर की राह पर जमकर चलना इस्लामी सब्र है और यह ज़रूर उन शक्लों में भी ज़ाहिर होता है जो बहुत महदूद पैमाने पर कुफ़्फ़ार की ज़िन्दगी में नज़र आती हैं। इसी मिसाल पर दूसरे तमाम बुनियादी अख़लाक़ियात का भी आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं। कुफ़्फ़ार की ज़िन्दगी में सही फ़िक्री बुनियाद न होने की वजह से वे ज़ईफ़ और महदूद होते हैं और इस्लाम उन सबको एक सही बुनियाद देकर मज़बूत भी करता है और उसमें फैलाव भी कर देता है।

इस्लाम का तीसरा काम यह है कि वह बुनियादी अख़लाक़ियात की शुरुआती मंज़िल पर अख़लाक़े-फ़ाज़िला (उच्च नैतिकता) की एक निहायत शानदार ऊपरी मंज़िल की तामीर करता है जिसकी बदौलत इनसान अपनी इज़्ज़त और अपने सौभाग्य की ऊँचाइयों तक पहुँचाता है। वह इसके नफ़्स को ख़ुदग़र्ज़ी से, नफ़सानियत से, ज़ुल्म से, बेहयाई से, गुनाह से और बेक़ैदी से पाक कर देता है। उसमें ख़ुदा-तरसी, तक़्वा, परहेज़गारी और हक़-परस्ती पैदा करता है। उसके अन्दर अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों का शऊर व एहसास

उभारता है। उसको अपने नफ़्स पर क़ाबू रखनेवाला बनाता है। उसे तमाम मख़लूक़ात के लिए करीम, फ़य्याज़, रहीम, हमदर्द, अमीन, बेग़र्ज़ ख़ैरख़ाह, बेलौस मुन्सिफ़ और हर हाल में सादिक़ व रास्तबाज़ बना देता है। और उसमें एक ऐसी बुलन्द पाया सीरत परवरिश करता है जिससे हमेशा भलाई ही की आशा हो और बुराई का कोई अन्देशा न हो। फिर इस्लाम आदमी को सिर्फ़ नेक ही बनाने पर बस नहीं करता बल्कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हदीस के शब्दों में उसे "भलाई का दरवाज़ा खोलनेवाला और बुराई का दरवाज़ा बन्द करनेवाला" बनाता है। यानी वह यह मिशन उसके हवाले करता है कि दुनिया में भलाई फैलाए और बुराई को रोके। इस सीरत व अख़लाक़ में क़ुदरती तौर पर वह ख़ूबसूरती है, वह कशिश है, वह सम्मोहन-शक्ति है कि अगर कोई संगठित जमाअत इस सीरत को माननेवाली हो और अमली तौर पर अपने उस मिशन के लिए काम भी करे जो इस्लाम ने उसको सौंपा है तो उसकी जहाँगीरी का मुक़ाबला करना दुनिया की किसी ताक़त के बस का काम नहीं है।

इमामत के सिलसिले में अल्लाह की सुन्नत का ख़ुलासा

अब मैं कुछ शब्दों में अल्लाह की उस सुन्नत को बयान कर देता हूँ जो नेतृत्व के बाब (अध्याय) में दुनिया के आरंभ से जारी है और जब तक इनसान अपनी मौजूदा फ़ितरत पर ज़िन्दा है उस वक़्त तक बराबर जारी रहेगी और वह यह है।

अगर दुनिया में कोई व्यवस्थित इनसानी गरोह ऐसा मौजूद न हो जो इस्लामी अख़लाक़ियात और बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात दोनों से आरास्ता हो और फिर भौतिक संसाधन और ज़रिए भी इस्तेमाल करे तो दुनिया का नेतृत्व व शासन अनिवार्यतः किसी ऐसे गरोह के क़ब्ज़े में दे दिया जाता है जो इस्लामी अख़लाक़ियात से चाहे बिल्कुल ही ख़ाली हो लेकिन बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात और भौतिक संसाधनों व ज़रिओं के एतिबार से दूसरों की तुलना में ज़्यादा बढ़ा हुआ हो; क्योंकि अल्लाह तआला बहरहाल अपनी दुनिया का इंतिज़ाम चाहता है और यह इंतिज़ाम उसी गरोह

के सुपुर्द किया जाता है जो उस वक़्त मौजूद गरोहों में ज़्यादा क़ाबिल हों।

लेकिन अगर कोई मुनज़्ज़म (सुसंगठित) गरोह ऐसा मौजूद हो जो इस्लामी अख़लाक़ियात और बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात दोनों में बाक़ी इनसानी दुनिया पर फ़ज़ीलत रखता हो और वह भौतिक संसाधन व स्रोतों के इस्तेमाल में भी कोताही न करे तो यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि उसके मुक़ाबले में कोई दूसरा गरोह दुनिया के नेतृत्व व शासन पर बना रह सके। ऐसा होना फ़ितरत के ख़िलाफ़ है, अल्लाह की उस सुन्नत के ख़िलाफ़ है जो इनसानों के मामले में उसने तय कर रखी है, उन वादों के ख़िलाफ़ है जो अल्लाह ने अपनी किताब में मोमिनों और नेक लोगों से किए हैं और अल्लाह हरगिज़ फ़साद पसन्द नहीं करता कि उसकी दुनिया में एक गरोह दुनिया की व्यवस्था को ठीक-ठीक उसकी रज़ा के मुताबिक़ दुरुस्त रखनेवाला मौजूद हो और फिर भी वह फ़सादियों ही के हाथ में इस व्यवस्था की बागडोर रहने दे।

मगर यह ख़्याल रहे कि यह नतीजा सिर्फ़ उसी वक़्त सामने आ सकता है जबकि एक नेक गुणों वाली जमाअत मौजूद हो। किसी एक नेक आदमी या मिले-जुले तौर पर बहुत-से नेक लोगों के मौजूद होने से दुनिया का निज़ाम नहीं बदल सकता चाहे वे लोग अपनी जगह कैसे ही ज़बरदस्त अल्लाह के वली बल्कि पैग़म्बर ही क्यों न हों। अल्लाह ने व्यवस्था के सम्बन्ध में जितने वादे भी किए हैं, बिखरे हुए या मिले-जुले लोगों से नहीं किए बल्कि ऐसी जमाअत से किए हैं जो दुनिया में अपने आपको अमली तौर पर "ख़ैरे-उम्मत" और "उम्मते-वसत" साबित कर दे।

और यह भी याद रहे कि ऐसे एक गरोह के सिर्फ़ वुजूद में आने ही से नेतृत्व की व्यवस्था में बदलाव नहीं हो जाएगा कि इधर वह बने और उधर अचानक आसमान से कुछ फ़रिश्ते उतरें और दुराचारियों और बदकारों को सत्ता की गद्दी से हटाकर उन्हें सत्ता की कुर्सी पर बैठा दें, बल्कि इस जमाअत को अवज्ञाकारियों और दुराचारियों की ताक़तों से ज़िन्दगी के हर मैदान में हर-हर क़दम पर कशमकश और संघर्ष करना होगा और दीन की

स्थापना की राह में हर क़िस्म की क़ुरबानियाँ देकर अपने हक़ के लिए मुहब्बत और अपनी क़ाबिलियत का सुबूत देना पड़ेगा। यह ऐसी शर्त है जिससे अंबिया तक अलग न रखे गए, आज कोई इससे अलग होने की उम्मीद कैसे कर सकता है।

बुनियादी अख़लाक़ियात और इस्लामी अख़लाक़ियात की ताक़त का फ़र्क़

भौतिक ताक़त और अख़लाक़ी ताक़त के अनुपात के अध्याय में क़ुरआन और इतिहास का गहन अध्ययन करने के बाद जो अल्लाह की सुन्नत मैं समझा हूँ वह यह है कि जहाँ अख़लाक़ी ताक़त का सारा दारोमदार सिर्फ़ बुनियादी इनसानी अख़लाक़ियात पर हो, वहाँ भौतिक संसाधन बड़ी अहमियत रखते हैं। यहाँ तक कि इस काम की भी संभावना है कि अगर एक गरोह के पास भौतिक संसाधनों की ताक़त बहुत ज़्यादा हो तो वह थोड़ी अख़लाक़ी ताक़त से भी दुनिया पर छा जाता है और दूसरे गरोह अख़लाक़ी ताक़त में अधिक होने के बावजूद सिर्फ़ संसाधनों की कमी की वजह से दबे रहते हैं। लेकिन जहाँ अख़लाक़ी ताक़त में इस्लामी और बुनियादी दोनों क़िस्मों के अख़लाक़ियात का पूरा ज़ोर शामिल हो, वहाँ भौतिक संसाधनों की निहायत कमी के बावुजूद अख़लाक़ को आख़िरकार उन तमाम ताक़तों पर जीत हासिल होकर रहती है, जो एकाकी बुनियादी अख़लाक़ियात और भौतिक सरो-सामान के बल-बूते पर उठी हो। इस अनुपात को इस तरह समझिए कि बुनियादी अख़लाक़ियात के साथ अगर सौ फ़ीसदी भौतिक ताक़त की ज़रूरत होती है तो इस्लामी और बुनियादी अख़लाक़ियात की संयुक्त ताक़त के साथ सिर्फ़ 25 फ़ीसद भौतिक ताक़त काफ़ी हो जाती है, बाक़ी 75 फ़ीसदी ताक़त की कमी महज़ इस्लामी अख़लाक़ियात का ज़ोर पूरा कर देता है। बल्कि नबी (सल्ल॰) के ज़माने का अनुभव तो यह बताता है कि इस्लामी अख़लाक़ अगर उस पैमाने का हो जो नबी (सल्ल॰) और आपके सहाबा (रज़ि॰) का था तो सिर्फ़ पाँच फ़ीसदी भौतिक ताक़त से भी काम चल जाता है। यही हक़ीक़त है जिसकी तरफ़ क़ुरआन की इस आयत में इशारा

किया गया है—

"अगर तुममें से बीस सब्र करनेवाले आदमी हों तो सौ पर ग़ालिब आएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-65)

यह आख़िरी बात जो मैंने अर्ज़ की है उसे सिर्फ़ ख़ुश अक़ीदगी से न जोड़िए और न यह समझिए कि मैं किसी चमत्कार और करामत का आपसे ज़िक्र कर रहा हूँ। नहीं, यह बल्कुल फ़ितरी हक़ीक़त है जो इसी दुनिया में एक कार्य-कारण सिद्धान्त के तहत पेश आती है। और हर वक़्त दिखाई दे सकती है अगर इस की वजह मौजूद हो। मैं मुनासिब समझता हूँ कि आगे बढ़ने से पहले कुछ शब्दों में इसकी व्याख्या कर दूँ कि इस्लामी अख़लाक़ियात से, जिनमें बुनियादी अख़लाक़ियात ख़ुद-ब-ख़ुद शामिल हैं, भौतिक संसाधनों की 75 फ़ीसदी तक कमी किस तरह पूरी हो जाती है।

इस चीज़ को समझने के लिए आप ख़ुद अपने ज़माने ही की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर एक नज़र डालकर देखिए। अभी आपके सामने वह बड़ा फ़साद जो आज से साढ़े पाँच साल पहले शुरू हुआ था (यहाँ इशारा है दूसरे विश्व युद्ध की ओर जो इस तक़रीर के वक़्त जारी था) जर्मनी की हार पर ख़त्म हुआ है और जापान की हार भी क़रीब नज़र आ रही है। जहाँ तक बुनियादी अख़लाक़ियात का सवाल है उनके एतिबार से इस फ़साद के दोनों पक्ष लगभग बराबर हैं बल्कि कुछ पहलुओं से जर्मनी और जापान ने अपने दुश्मनों के मुक़ाबले में ज़्यादा ज़बरदस्त अख़लाक़ी ताक़त का सुबूत दिया है। जहाँ तक भौतिक ज्ञान और उनको अमल में लाने की बात है उसमें भी दोनों पक्ष बराबर हैं, बल्कि इस मामले में कम से कम जर्मनी की प्रधानता तो किसी से छिपी नहीं है। मगर सिर्फ़ एक चीज़ है जिसमें एक पक्ष दूसरे पक्ष से बहुत ज़्यादा बढ़ा हुआ है, और वह है प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता। उसके पास आदमी अपने दोनों दुश्मनों (जर्मनी और जापान) से कई गुना ज़्यादा हैं। उसको भौतिक संसाधन उनके मुक़ाबले में कई गुना ज़्यादा हासिल है। उसकी भौगोलिक स्थिति भी उनसे बेहतर है। और उसको ऐतिहासिक साधनों ने उनके मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा बेहतर हालात फ़राहम कर दिए हैं।

इसी वजह से उसको विजय प्राप्त हुई है और इसी वजह से आज किसी ऐसी क़ौम के लिए भी जिसकी तादाद कम हो और जिसके पास भौतिक संसाधन कम हों इस बात की कोई संभावना नज़र नहीं आती कि वे अधिक जनसंख्या वाले और साधन सम्पन्न क़ौमों से मुक़ाबले में सर उठा सकें चाहे वे बुनियादी अख़लाक़ियात में और भौतिक ज्ञान के इस्तेमाल में उनसे कुछ बढ़ ही क्यों न जाए। इसलिए कि बुनियादी अख़लाक़ियात और भौतिक ज्ञान के बल पर उठनेवाली क़ौम का मामला दो तरह का होगा। या तो वह खुद अपनी क़ौमियत की परस्तार होगी और दुनिया को अपने लिए जीतना चाहेगी या फिर वह कुछ अंतर्राष्ट्रीय नियमों को माननेवाली बनकर उठेगी और दूसरी क़ौमों को उनकी तरफ़ दावत देगी। पहली सूरत में तो उसके लिए कामयाबी की कोई शक्ल इसके सिवा है ही नहीं कि वह प्राकृतिक ताक़त और संसाधनों में दूसरों से प्रधानता रखती हो। क्योंकि वे तमाम क़ौमें जिनपर उसकी इस सत्ता के स्वार्थ का असर पड़ रहा होगा बहुत ही गुस्से व नफ़रत के साथ विरोध करेंगी, उसका रास्ता रोकने में अपनी तरफ़ से कोई कसर बाक़ी न रखेंगी। रही दूसरी सूरत तो इसमें निस्सन्देह इसकी संभावना तो ज़रूर है कि क़ौमों के दिलो-दिमाग़ ख़ुद-ब-ख़ुद उसकी उसूली दावत से प्रभावित होते चले जाएँ और उसे विरोध को ख़त्म करने में बहुत थोड़ी ताक़त इस्तेमाल करनी पड़े। लेकिन यह याद रहना चाहिए कि दिल सिर्फ़ कुछ ख़ूबसूरत उसूलों से ही प्रभावित नहीं हो जाया करते बल्कि उन्हें प्रभावित करने के लिए वह हक़ीक़ी ख़ैरख़ाही, नेक नीयती, रास्तबाज़ी, बेग़र्ज़ी, फ़राख़ दिली, फ़य्याज़ी, हमदर्दी और शराफ़त व अदालत की ज़रूरत है जो जंग और शान्ति, जीत और हार, दोस्ती और दुश्मनी तमाम हालात की कड़ी आज़माइशों में खरी और बेलौस साबित हो और यह चीज़ उच्च नैतिकता की उस बुलन्द मंज़िल से तआल्लुक़ रखती है जिसका मक़ाम बुनियादी अख़लाक़ियात से बहुत ऊपर है। यही वजह है कि तन्हा बुनियादी अख़लाक़ियात और भौतिक ताक़त के बल पर उठनेवाले चाहे खुले क़ौम-परस्त हों या चाहे छिपे क़ौम-परस्ती के साथ कुछ अंतर्राष्ट्रीय उसूलों की दावत व हिमायत का ढोंग रचाएँ, आख़िरकार उनकी सारी जिद्दो-जुहद और कशमकश

ख़ालिस निजी या तबक़ाती या क़ौमी खुदग़र्ज़ी ही पर आ ठहरती है जैसा कि आज आप अमेरिका, ब्रिटेन और रूस की विदेश नीतियों में साफ़ तौर पर देख सकते हैं। ऐसी कशमकश में यह एक बिल्कुल स्वाभाविक बात है कि हर क़ौम दूसरी क़ौम के मुक़ाबले में एक मज़बूत चट्टान बनकर खड़ी हो जाए। अपनी पूरी अख़लाक़ी व भौतिक ताक़त उसके विरोध में ख़र्च कर दे और अपनी हदों में उसे राह देने के लिए हरगिज़ तैयार न हो जब तक कि विरोधी की अधिक भौतिक ताक़त उसको पीसकर न रख दे।

अच्छा, अब ज़रा तसव्वुर कीजिए कि इसी माहौल में एक ऐसा गरोह (चाहे वह एक ही क़ौम से उठा हो मगर "क़ौम" की हैसियत से नहीं बल्कि एक "जमाअत" की हैसियत से उठा हो) पाया जाता है जो वैयक्तिक, वर्गीय और क़ौमी स्वार्थों से बिल्कुल पाक है। उसकी कोशिश और प्रयास का कोई मक़सद इसके सिवा नहीं है कि वह मानव-जाति की सफलता कुछ उसूलों की पैरवी में देखता है और इनसानी ज़िन्दगी का निज़ाम उनपर क़ायम करना चाहता है। उन उसूलों पर जो सोसायटी वह बनाता है उसमें क़ौमी व वतनी और वर्गीय व नस्ली भेदभाव बिल्कुल शामिल नहीं हैं। तमाम इनसान इसमें बराबर हक़ और समान हैसियत से शामिल हो सकते हैं। इसमें रहनुमाई व शासन का अधिकार हर उस शख़्स या संयुक्त तौर पर उन लोगों को हासिल हो सकता है जो इन उसूलों की पैरवी में सब पर प्रधानता रखते हों बजाय इसके कि उसकी नस्ली, वतनी क़ौमियत कुछ ही हो। इसमें इस बात की भी संभावना है कि अगर विजित ईमान लाकर अपने आपको नेक साबित कर दे तो विजेता अपनी सरफ़रोशियों और जांफ़िशानियों के सारे समरात उसके क़दमों में लाकर रख दे और उसको इमाम मानकर खुद मुक़तदी बनना क़बूल कर ले। यह गरोह जब अपनी दावत लेकर उठता है तो वे लोग जो, इसके उसूलों को चलने देना नहीं चाहते, उसका विरोध करते हैं और इस तरह पक्षों में कशमकश शुरू हो जाती है। मगर यह कशमकश जितनी अधिक बढ़ती जाती है यह गरोह अपने विरोधियों के मुक़ाबले में उतने ही ज़्यादा अफ़ज़ल व बेहतरीन अख़लाक़ का सबूत देता चला जाता है। वह अपने काम करने के तरीक़े से साबित करता है कि वाक़ई अल्लाह

की मख़लूक़ की भलाई के सिवा कोई दूसरा स्वार्थ उसके सामने नहीं है। उसकी दुश्मनी अपने विरोधियों की ज़ात या क़ौमियत से नहीं बल्कि सिर्फ़ उनकी पथभ्रष्टता और गुमराही से है जिसे वह छोड़ दे तो वह अपने ख़ून के प्यासे दुश्मन को भी सीने से लगा सकता है। उसे लालच उनके माल और दौलत या उनके कारोबार और कारीगरी का नहीं बल्कि खुद उन्हीं की अख़लाक़ी और रूहानी भलाई का है जो हासिल हो जाए तो उनकी दौलत उन्हीं को मुबारक रहे। वह सख़्त से सख़्त आज़माइश के मौक़ों पर भी झूठ, दग़ा, मकर और फ़रेब से काम नहीं लेता। टेढ़ी चालों का जवाब भी सीधी तदबीरों से देता है। इन्तिक़ाम के जोश में भी ज़ुल्म व ज़्यादती पर आमादा नहीं होता, जंग के सख़्त लम्हों में भी अपने उन उसूलों की पैरवी नहीं छोड़ता जिनकी दावत देने के लिए वह उठा है। सच्चाई, वादा निभाना और और अच्छे व्यवहार में हर हाल पर क़ायम रहता है। बेलाग इनसाफ़ करता है और अमानत व दयानत के उस मेयार पर पूरा उतरता है जिसे शुरू में उसने दुनिया के सामने मेयार की हैसियत से पेश किया था। विरोधियों की व्यभिचारी, शराबी, जुआरी और संगदिल व बेरहम फ़ौजों से जब इस गरोह के खुदातरस, पाक, इबादत-गुज़ार, नेकदिल और रहीम और करीम मुजाहिदों का मुक़ाबला होता है तो एक-एक करके इनकी इनसानियत उनकी दरिन्दगी और हैवानियत पर भारी नज़र आती है। वे उनके पास जख़्मी या क़ैदी होकर आते हैं तो यहाँ हर तरफ़ नेकी और शराफ़त और पाकीज़ा अख़लाक़ का माहौल देखकर उनकी गंदगी से सनी रूहें भी पाक होने लगती हैं और ये वहाँ गिरफ़्तार होकर जाते हैं तो उनका जौहरे-इनसानियत उस अंधेरे माहौल में और ज़्यादा चमक उठता है। इनको किसी इलाक़े पर जीत हासिल होती है तो विजित आबादी को बदला लेने की जगह माफ़ी, ज़ुल्म व ज़ोर की जगह रहम और इनसाफ़, संगदिली की जगह हमदर्दी, घमंड और ग़ुरूर की जगह नर्मदिली और तवाजोअ, ग़लतियों की जगह ख़ैर की दावत, झूठे प्रोपैगन्डों की जगह हक़ के उसूलों की तबलीग़ का तजरिबा होता है और वे ये देखकर अश-अश (बहुत खुश होना) करने लगते हैं कि विजेता सिपाही न उनसे औरतें मांगते हैं, न दबे-छिपे हुए माल टटोलते फिरते हैं, न उनकी कारीगरी

के राज़ जानने की कोशिश करते हैं, न उनकी आर्थिक ताक़त को कुचलने की फ़िक्र करते हैं, न उनकी क़ौमी इज़्ज़त को ठोकर मारते हैं, बल्कि उन्हें अगर कुछ फ़िक्र है तो यह कि जो मुल्क अब उनके चार्ज में है, उसके निवासियों में से किसी की इसमत (इज़्ज़त व सम्मान) ख़राब न हो, किसी के माल को नुक़सान न पहुँचे, कोई अपने जायज़ हक़ से महरूम न हो, कोई बदअख़लाक़ी उनके दरमियान पैदा न हो सके और सामूहिक ज़ुल्म व ज़ोर किसी शक्ल में भी वहाँ बाक़ी न रहे। इसके विपरीत जब विरोधी पक्ष किसी इलाक़े में घुस आता है तो सारी आबादी उसकी ज़्यादतियों और बेरहमियों से चीख़ उठती है। अब आप खुद ही अंदाज़ा कर लें कि ऐसी लड़ाई में क़ौम-परस्ताना लड़ाइयों के मुक़ाबले में कितना फ़र्क़ पड़ जाएगा। ज़ाहिर है कि ऐसे मुक़ाबले में इनसानियत की अधिकता भौतिक संसाधनों की कमी के बावुजूद भी अपने विरोधियों की हैवानियत को भी आख़िरकार पराजित करके रहेगी। अख़लाक़ी ज्ञान के हथियार तोप व तुफ़ंग (हवाई बन्दूक़) से ज़्यादा दूर तक मार करनेवाले साबित होंगे। ठीक जंग की हालत में दुश्मन दोस्तों में बदल जाएँगे। जिस्मों से पहले दिल प्रभावित होंगे। आबादियों की आबादियाँ लड़े-भिड़े बग़ैर हार जाएँगी और यह नेक गरोह जब एक बार मुट्ठी भर जमाअत और थोड़े-से सरो-सामान के साथ अपना काम शुरू कर देगा तो धीरे-धीरे खुद विरोधी कैम्प ही से उसको जेनरल, सिपाही, फ़न के माहिर, हथियार, रसद, जंग का सामान सब कुछ हासिल होते चले जाएँगे।

यह जो कुछ मैं अर्ज़ कर रहा हूँ यह कोरी कल्पना और अंदाज़ा नहीं है बल्कि अगर आपके सामने नबी (सल्ल०) और खुलफ़ाए-राशिदीन (रज़ि०) के दौरे-मुबारक की ऐतिहासिक मिसाल मौजूद हो तो आप समझ जाएँगे कि इससे पहले यही कुछ हो चुका है और आज भी यही कुछ हो सकता है, शर्त यह है कि किसी में यह तजरिबा करने की हिम्मत हो।

हज़रात! मुझे उम्मीद है कि इस तक़रीर से यह हक़ीक़त आपके ज़ेहनों में बैठ गई होगी कि ताक़त का अस्ली स्रोत अख़लाक़ी ताक़त है। अगर दुनिया में कोई व्यवस्थित गरोह ऐसा मौजूद हो जो बुनियादी अख़लाक़ियात के साथ इस्लामी अख़लाक़ियात की ताक़त भी अपने अन्दर रखता हो और

भौतिक संसाधनों से भी काम लेता हो तो यह बात सोचना भी मुश्किल है और स्वाभाविक रूप से असम्भव है कि इसकी मौजूदगी में कोई दूसरा गरोह दुनिया का नेतृत्व और शासन पर क़ाबिज़ रह सके।

इसके साथ मुझे उम्मीद है कि आपने यह भी अच्छी तरह समझ लिया होगा कि मुसलमानों की मौजूदा पस्त हालती की अस्ल वजह क्या है। ज़ाहिर बात है कि जो लोग न भौतिक संसाधनों से काम लें, न बुनियादी अख़लाक़ियात उनमें हों और न सामूहिक तौर पर उनके अन्दर इस्लामी अख़लाक़ियात पाए जाएँ, वे किसी तरह भी इमामत की गद्दी पर आसीन नहीं रह सकते। ख़ुदा की अटल बेलाग सुन्नत का तक़ाज़ा यही है कि उनपर ऐसे अवज्ञाकारियों को तरजीह दी जाए तो इस्लामी अख़लाक़ियात से ख़ाली सही मगर कम-से-कम बुनियादी अख़लाक़ियात और भौतिक संसाधनों के इस्तेमाल में तो उनसे बढ़े हुए हैं और अपने आपको उनकी तुलना में दुनिया के प्रबन्ध के योग्य सिद्ध कर रहे हैं। इस मामले में अगर आपको कोई शिकायत हो तो अल्लाह की सुन्नत से नहीं बल्कि अपने आप से होनी चाहिए और इस शिकायत का नतीजा यह होना चाहिए कि आप अब अपनी इस कमी को दूर करने की फ़िक्र करें, जिसने आपको इमाम से मुक़तदी बना दिया और अगली पंक्ति से पिछली पंक्ति में लाकर छोड़ दिया है।

इसके बाद ज़रूरत है कि मैं साफ़ और स्पष्ट तरीक़े से आपके सामने इस्लामी अख़लाक़ियात की बुनियादों को भी पेश करूँ; क्योंकि मुझे मालूम है कि इस मामले में आम तौर पर मुसलमानों के विचार बुरी तरह से उलझे हुए हैं। इस उलझन की वजह से बहुत ही कम आदमी यह जानते हैं कि इस्लामी अख़लाक़ियात हक़ीक़त में किस चीज़ का नाम है और इस पहलू से इनसान की तरबियत और इसकी पूर्ति के लिए कौन-सी चीज़ें किस क्रम और सिलसिले के मुताबिक़ उसके अन्दर पैदा की जानी चाहिएँ।

इस्लामी अख़लाक़ियात के चार दर्जे

जिस चीज़ को हम इस्लामी अख़लाक़ियात का नाम देते हैं वह क़ुरआन और हदीस की रौशनी में चार दर्जों पर आधारित है : ईमान, इस्लाम, तक़वा

और एहसान। ये चारों दर्जे एक के बाद एक इस स्वाभाविक क्रम पर आधारित हैं कि प्रत्येक बाद वाला दर्जा पहले दर्जे से पैदा और लाज़िमी तौर पर इसी पर क़ायम होता है और जब तक नीचेवाली मंज़िल पुख़्ता और मज़बूत न हो जाए दूसरी मंज़िल की तामीर के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। इस पूरी इमारत में ईमान को बुनियाद की हैसियत हासिल है। इस बुनियाद पर इस्लाम की मंज़िल तामीर होती है, फिर उसके ऊपर तक़वा (परहेज़गारी) और सबसे ऊपर एहसान की मंज़िलें उठती हैं। ईमान न हो तो इस्लाम और तक़वा या एहसान की सिरे से कोई संभावना ही नहीं। ईमान कमज़ोर हो तो उसपर किसी ऊपरी मंज़िल का बोझ नहीं डाला जा सकता या ऐसी कोई मंज़िल तामीर कर भी दी जाए तो वह कमज़ोर और डगमगाने वाली होगी। ईमान सीमित हो तो जितने सीमा में वह सीमित होगा इस्लाम, तक़वा और एहसान भी बस उन्हीं सीमाओं तक सीमित रहेंगे। इसलिए जब तक ईमान पूरी तरह सही, पुख़्ता और विस्तृत न हो कोई भी अक़्लवाला जो दीन की समझ रखता हो इस्लाम, तक़वा या एहसान की तामीर का ख़याल नहीं कर सकता। इसी तरह तक़वा से पहले इस्लाम और एहसान से पहले तक़वा की दुरुस्तगी, मज़बूती और कुशादगी ज़रूरी है। लेकिन अकसर हम देखते हैं कि लोग इस स्वाभाविक व उसूली तरतीब (क्रम) को नज़रअंदाज करके ईमान और इस्लाम की तकमील के बग़ैर तक़वा और एहसान की बातें शुरू कर देते हैं और इससे भी ज़्यादा अफ़सोसनाक यह है कि लोगों के ज़ेहनों में ईमान और इस्लाम का एक निहायत महदूद तसव्वुर है। इसी वजह से वे समझते हैं कि महज़ शक्ल-सूरत, लिबास, उठने-बैठने की तमीज़, खाना-पीना और ऐसी ही कुछ ज़ाहिरी चीज़ों को एक तयशुदा नक़्शे पर ढाल लेने से तक़वा पूरा हो जाता है और फिर इबादत में नवाफ़िल और ज़िक्र और वज़ीफ़े और ऐसी ही कुछ अमल कर लेने से एहसान का बुलन्द मक़ाम हासिल हो जाता है। हालांकि कभी-कभी इसी 'तक़वे' और 'एहसान' के साथ-साथ लोगों की ज़िन्दगियों में ऐसी साफ़ अलामातें भी नज़र आती हैं जिनसे पता चलता है कि अभी उनका ईमान ही सिरे से पुख़्ता नहीं हुआ है। ये ग़लतियाँ जब तक मौजूद हैं किसी तरह यह उम्मीद नहीं की जा सकती

है कि हम इस्लामी अख़लाक़ियात का निसाब (पाठ्यक्रम) पूरा करने में कभी कामयाब हो सकेंगे। इसलिए यह ज़रूरी है कि हमें ईमान, इस्लाम, तक़वा और एहसान के उन चारों दर्जों का पूरा-पूरा तसव्वुर भी हासिल हो और इसके साथ हम उनकी फ़ितरी तर्तीब को भी अच्छी तरह समझ लें।

ईमान

इस सिलसिले में सबसे पहले ईमान को लीजिए जो इस्लामी ज़िन्दगी की बुनियाद है। हर शख़्स जानता है कि तौहीद और रिसालत के इक़रार का नाम ईमान है। अगर कोई शख़्स इसका इक़रार कर ले तो इससे वह क़ानूनी शर्त पूरी हो जाती है जो इस्लाम में दाख़िल होने के लिए रखी गई है और वह इसका हक़दार हो जाता है कि उसके साथ मुसलमानों का-सा मामला किया जाए। मगर क्या यही सादा इक़रार, जो एक क़ानूनी ज़रूरत पूरी करने के लिए काफ़ी है, इस ग़रज़ के लिए भी काफ़ी हो सकता है कि इस्लामी ज़िन्दगी की इमारत की सारी मंज़िल इसी बुनियाद पर क़ायम हो सके? लोग ऐसा ही समझते हैं और इसी लिए जहाँ यह इक़रार मौजूद होता है वहाँ अमली इस्लाम और तक़वा और एहसान की तामीर शुरू कर दी जाती है जो अकसर हवाई क़िले से ज़्यादा पायदार साबित नहीं होती। लेकिन वास्तव में एक मुकम्मल इस्लामी ज़िन्दगी की तामीर के लिए यह ज़रूरी है कि ईमान अपनी तफ़सीलों में पूरी तरह फैला हुआ और अपनी गहराई में अच्छी तरह से मज़बूत हो। ईमान की तफ़सीलात में से जो विभाग भी छूट जाएगा, इस्लामी ज़िन्दगी का वही विभाग तामीर होने से रह जाएगा और इसकी गहराई में जहाँ भी कसर रह जाएगी इस्लामी ज़िन्दगी की इमारत उसी मक़ाम पर कमज़ोर साबित होगी।

मिसाल के तौर पर अल्लाह पर ईमान को देखिए जो दीन की प्राथमिक बुनियाद है। आप देखेंगे कि ख़ुदा का इक़रार अपनी सादा सूरत से गुज़र कर जब तफ़सील में पहुँचता है तो लोगों के ज़ेहन में इसकी अनगिनत सूरतें बन जाती हैं। कहीं वह सिर्फ़ इस हद पर ख़त्म हो जाता है कि बेशक ख़ुदा मौजूद है और दुनिया का ख़ालिक़ है और अपनी ज़ात में अकेला है, कहीं इसका

विस्तार बस इतना होता है कि ख़ुदा हमारा माबूद है और हमें उसकी परस्तिश करनी चाहिए। कहीं ख़ुदा की ख़ूबियों और उसके हक़्क़ों और अधिकारों का तसव्वुर कुछ ज़्यादा फैलाव लेकर भी इससे आगे नहीं बढ़ता कि ग़ैब का इल्म रखनेवाला, सुनने और देखनेवाला, दुआओं को सुननेवाला और ज़रूरतों को पूरा करनेवाला और "परस्तिश" की तमाम आंशिक शक्लों का हक़दार होने में ख़ुदा का कोई शरीक नहीं है और यह कि 'मज़हबी मामलात' में आख़िरी सनद ख़ुदा ही की किताब है। ज़ाहिर है कि इन विभिन्न विचारों से एक ही तर्ज़ की ज़िन्दगी नहीं बन सकती बल्कि जो तसव्वुर जितना महदूद है अमली ज़िन्दगी और अख़लाक़ में भी लाज़िमन इस्लामी रंग उतना ही महदूद होगा। यहाँ तक कि जहाँ आम मज़हबी तसव्वुरों के मुताबिक़ अल्लाह पर ईमान अपने चरम विस्तार पर पहुँच जाएगा वहाँ भी इस्लामी ज़िन्दगी इससे आगे न बढ़ सकेगी कि ख़ुदा के बाग़ियों की वफ़ादारी और ख़ुदा की वफ़ादारी एक साथ निबाह ली जाए या निज़ामे-कुफ़्र और निज़ामे-इस्लाम को मिलाकर एक मिक्सचर (मिश्रण) बना लिया जाए।

इसी तरह अल्लाह पर ईमान की गहराई का पैमाना भी अलग है। कोई ख़ुदा का इक़रार करने के बावुजूद अपनी किसी मामूली से मामूली चीज़ को भी ख़ुदा पर क़ुरबान करने के लिए तैयार नहीं होता। कोई कुछ चीज़ों से ख़ुदा को अज़ीज़ रखता है मगर कुछ चीज़ें उसे ख़ुदा से अज़ीज़ होती हैं। कोई अपनी जान तक ख़ुदा पर क़ुरबान कर देता है मगर अपने नफ़्स के रुझान और अपने नज़रियात व विचारों की क़ुरबानी या अपनी शोहरत की क़ुरबानी उसे गवारा नहीं होती। ठीक-ठीक उसी अनुपात से इस्लामी ज़िन्दगी की मज़बूती और कमज़ोरी भी तय होती है और इनसान का इस्लामी अख़लाक़ ठीक उसी जगह धोखा दे जाता है जहाँ उसके नीचे ईमान की बुनियाद कमज़ोर रह जाती है।

एक मुकम्मल इस्लामी ज़िन्दगी की इमारत अगर उठ सकती है तो सिर्फ़ इसी तौहीद के इक़रार पर उठ सकती है जो इनसान की पूरी निजी और

सामूहिक ज़िन्दगी पर फैली हो जिसके मुताबिक़ इनसान अपने आपको और अपनी हर चीज़ को खुदा की जायदाद समझे। उसको अपना और तमाम दुनिया का एक ही जायज़ मालिक, माबूद, इताअत के क़ाबिल और साहिबे-अमरो-नही (हुक्म जारी करनेवाला) तस्लीम करे। उसी को हिदायत का स्रोत माने और पूरे शऊर के साथ इस हक़ीक़त पर मुत्मइन हो जाए कि खुदा की इताअत से मुँह फेरना या उसकी हिदायत से बेनियाज़ी या उसकी ज़ात व सिफ़ात और हुक़ूक़ व अधिकारों में ग़ैर को शरीक करना जिस पहलू और जिस रंग में भी है सरासर ज़लालत है। फिर इस इमारत में अगर मज़बूती पैदा हो सकती है तो सिर्फ़ उसी वक़्त जबकि आदमी पूरे शऊर और पूरे इरादे के साथ यह फ़ैसला करे कि वह और उसका सब कुछ अल्लाह का है और अल्लाह ही के लिए है। अपने पसन्द और नापसन्द के मेयार को त्याग करके अल्लाह की पसन्द और नापसन्द के अधीन कर दे और अपनी खुद्दारी को मिटाकर अपने दृष्टिकोण और ख़यालात, ख़ाहिशात, जज़बात और अन्दाज़े-फ़िक्र को उस इल्म के मुताबिक़ ढाल ले जो खुदा ने अपनी किताब में दिया है। अपनी उन तमाम वफ़ादारियों को त्याग दे जो खुदा की वफ़ादारी के अधीन न हों बल्कि इसके मुक़ाबले में बनी हुई हों या बन सकती हों। अपने दिल में सबसे बुलन्द मक़ाम पर खुदा की मुहब्बत को रखे और हर उस बुत को ढूँड-ढूँड कर अपने दिल से निकाल फेंके जो खुदा के मुक़ाबले में अधिक प्रिय होने की माँग करता हो। अपनी मुहब्बत और नफ़रत, अपनी दोस्ती और दुश्मनी, अपनी रग़बत और कराहियत, अपनी सुलह और जंग हर चीज़ को खुदा की मर्ज़ी में इस तरह गुम कर दे कि उसका नफ़्स भी वही चाहने लगे जो खुदा चाहता है और उसी से भागने लगे जो खुदा को नापसन्द है। यह है अल्लाह के लिए ईमान का हक़ीक़ी मर्तबा और आप खुद समझ सकते हैं कि जहाँ ईमान ही उन हैसियतों से अपने फैलाव और व्यापकता और अपनी पुख़्तगी व मज़बूती में नाक़िस हो वहाँ तक़वा या एहसान की क्या उम्मीद हो सकती है। क्या इस नुक़्स को दाढ़ियों के बढ़ाने, लिबास पर ध्यान देने, इबादत और तहज्जुद से पूरा किया जा सकता है?

इसी पर दूसरे ईमानों का भी अन्दाज़ा लगा लीजिए। नुबूवत पर ईमान उस वक़्त तक मुकम्मल नहीं होता जब तक इनसान का नफ़्स ज़िन्दगी के सारे मामलों में नबी (सल्ल॰) को अपना रहनुमा न मान ले और उसकी रहनुमाई के ख़िलाफ़ या उससे आज़ाद जितनी रहनुमाइयाँ हों उनको रद्द न कर दे। किताब पर ईमान उस वक़्त तक नाक़िस ही रहता है जब तक नफ़्स में अल्लाह की किताब के बताए हुए ज़िन्दगी के उसूल के सिवा किसी दूसरी चीज़ की हुकूमत पर रज़ामन्दी की मिलावट भी बाक़ी हो। या अल्लाह का हुक्म पूरा करने में अपनी और सारी दुनिया की ज़िन्दगी का क़ानून देखने के लिए दिल और रूह की बेचैनी में कुछ भी कसर नहीं हो। इसी तरह आख़िरत पर ईमान भी मुकम्मल नहीं कहा जा सकता जब तक नफ़्स पूरी तरह आख़िरत को दुनिया पर तरजीह देने और आख़िरत के मुक़ाबले में दुनियावी चीज़ों को ठुकरा देने के लिए तैयार न हो जाए और आख़िरत की जवाबदेही का ख़याल उसे ज़िन्दगी की हर राह पर चलते हुए क़दम-क़दम पर खटकने न लगे। ये बुनियादें ही जहाँ पूरी न हों आख़िर वहाँ इस्लामी ज़िन्दगी की आलीशान इमारत किस तरह तामीर होगी? जब लोगों ने इन बुनियादों की कुशादगी व पूर्ति और मज़बूती के बग़ैर इस्लामी अख़लाक़ की तामीर को मुमकिन समझा तब ही तो नौबत यहाँ तक पहुँची कि अल्लाह की किताब के ख़िलाफ़ फ़ैसला करनेवाले जज, ग़ैर-इस्लामी क़ानून की बुनियाद पर मुक़दमे लड़ानेवाले वकील, कुफ़्र के निज़ाम के मुताबिक़ ज़िन्दगी के मामलों का इंतिज़ाम करनेवाले कर्मचारी, काफ़िराना संस्कृति के उसूलों और शासन पर ज़िन्दगी की शक्ल और बुनियाद के लिए लड़ानेवाले लीडर और उसकी पैरवी करनेवाले यहाँ तक कि सबके लिए तक़वा व एहसान के ऊँचे मरतबों का दरवाज़ा खुल गया, बशर्ते कि वे अपनी ज़िन्दगी के ज़ाहिरी अंदाज़ व चाल-चलन को एक ख़ास नक़्शे पर ढाल लें और कुछ नफ़्लों और ज़िक्र करने की आदत डाल लें।

इस्लाम

ईमान की ये बुनियादें जिनका मैंने अभी आपसे ज़िक्र किया है जब

मुकम्मल और गहरी हो जाती हैं तो उनपर इस्लाम की मंज़िल शुरू होती है। इस्लाम दरअसल ईमान के अमली रूप का दूसरा नाम है। ईमान और इस्लाम का आपसी सम्बन्ध वैसा ही है जैसा बीज और पेड़ का सम्बन्ध होता है। बीज में जो कुछ और जैसा कुछ मौजूद होता है वही पेड़ की शक्ल में सामने आ जाता है। पेड़ की जाँच करने से आसानी से यह पता लगाया जा सकता है कि बीज में क्या था और क्या न था। आप न यह तसव्वुर कर सकते हैं कि बीज न हो और पेड़ मौजूद हो और न यही तसव्वुर कर सकते हैं कि ज़मीन बंजर भी न हो और बीज उसमें मौजूद भी हो फिर भी पेड़ पैदा न हो। ऐसा ही मामला ईमान और इस्लाम का है। जहाँ ईमान मौजूद होगा आदमी की अमली ज़िन्दगी में वह ज़रूर दिखाई देगा, आदमी के अख़लाक़ में, सम्बन्धों के टूटने और जुड़ने में, दौड़-धूप की दिशा में, मज़ाक़ व मिज़ाज के स्वभाव में, कोशिश व प्रयास के रास्तों में, औक़ात और क़ुव्वतों और क़ाबिलियतों में, यहाँ तक कि ज़ाहिरी ज़िन्दगी के हर-हर हिस्से में दिखाई देकर रहेगा। इनमें से जिस पहलू पर भी इस्लाम के बजाय ग़ैर-इस्लामी असर दिखाई दे रहा हो यक़ीन कर लीजिए कि उस पहलू में ईमान मौजूद नहीं है, या है तो बिल्कुल कमज़ोर और बेजान है और अगर अमली ज़िन्दगी सारी की सारी ही ग़ैर-इस्लामी तरीक़े से गुज़र रही हो तो जान लीजिए कि दिल ईमान से ख़ाली है। ज़मीन इतनी बंजर है कि ईमान का बीज फूटकर हरियाली नहीं ला रहा है। बहरहाल, मैंने जहाँ तक क़ुरआन व हदीस को समझा है यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि दिल में ईमान हो और अमल में इस्लाम न हो।

(इस मौक़े पर एक साहब ने उठकर पूछा कि ईमान और अमल को आप एक ही चीज़ समझते हैं या इन दोनों में कुछ फ़र्क़ है? इसके जवाब में कहा)

आप थोड़ी देर के लिए अपने ज़ेहन से उन बहसों को निकाल दें जो फ़ुक़हा और मुतकल्लमीन ने इस मसले में की हैं और क़ुरआन से इस मामले को समझने की कोशिश करें। क़ुरआन से साफ़ मालूम होता है कि एतिक़ादी ईमान और अमली इस्लाम एक-दूसरे से वाबस्ता हैं। अल्लाह तआला जगह-जगह ईमान और नेक अमल का साथ-साथ ज़िक्र करता है और तमाम

अच्छे वादे जो उसने अपने बन्दों से किए हैं उन्हीं लोगों से तआल्लुक़ रखते हैं जो एतिक़ाद में मोमिन और अमल में मुस्लिम हों। फिर आप देखेंगे कि अल्लाह तआला ने जहाँ-जहाँ कपटाचारियों को पकड़ा है वहाँ उनके अमल ही की ख़राबियों से उनके ईमान के नुक़्स पर दलील क़ायम की है और अमली इस्लाम ही को हक़ीक़ी ईमान की पहचान ठहराया है। इसमें कोई शक नहीं कि क़ानूनी लिहाज़ से किसी शख़्स को काफ़िर ठहराने और उम्मत से उसका रिश्ता काट देने का मामला दूसरा है और इसमें बहुत ज़्यादा एहतियात बरतनी चाहिए। मगर मैं यहाँ उस ईमान और इस्लाम का ज़िक्र नहीं कर रहा हूँ जिसमें दुनिया में फ़िक़्ही हुक्मों को तरतीब दिया गया है बल्कि यहाँ ज़िक्र उस ईमान और इस्लाम का है जो ख़ुदा के यहाँ मोतबर है और जिसपर आख़िरत के नतीजे तरतीब देनेवाले हैं। क़ानूनी दृष्टिकोण को छोड़कर हक़ीक़ते-हालात, जिनपर सबकी एक राय है, के लिहाज़ से अगर आप देखेंगे तो यक़ीनन यही पाएँगे कि जहाँ अमलन ख़ुदा के आगे हार मानना और अपने आपको ख़ुदा के हवाले कर देने में कमी है, जहाँ नफ़्स की पसन्द ख़ुदा की पसन्द से अलग है, जहाँ ख़ुदा की वफ़ादारी के साथ ग़ैर की वफ़ादारी निभ रही है, जहाँ ख़ुदा का दीन क़ायम करने की कोशिश के बजाय दूसरे मामलों में व्यस्तता है, जहाँ कोशिश और मेहनतें ख़ुदा की राह के बजाय दूसरी-दूसरी राहों में हो रही हैं, वहाँ ज़रूर ईमान में दोष है। और ज़ाहिर है कि ईमान की ख़राबी पर तक़वा और एहसान की तामीर नहीं हो सकती चाहे दिखाने के लिए मुत्तक़ियों की-सी शक्ल बनाने और मुहसिनीन के जैसे कुछ अमल की नक़्ल उतारने की कितनी ही कोशिश की जाए। बाहरी झूठी शक्लें अगर हक़ीक़त की रूह से ख़ाली हों तो उनकी मिसाल बिल्कुल ऐसी है जैसी एक बहुत ही ख़ूबसूरत आदमी की लाश बेहतरीन शक्ल व हालत में मौजूद हो मगर उसमें जान न हो। इस ख़ूबसूरत लाश की ज़ाहिरी शान से धोखा खाकर आप अगर कुछ उम्मीदें उससे जोड़ लेंगे तो हालात पहले ही इम्तिहान में उसके नाकारा होने को साबित कर देंगे और अनुभव से आपको ख़ुद ही मालूम हो जाएगा कि एक बदसूरत मगर ज़िन्दा इनसान एक ख़ूबसूरत मगर बिना रूह की लाश से ज़्यादा कारगर है।

दिखावटी फ़रेबों से आप अपने नफ़्स को तो ज़रूर धोखा दे सकते हैं लेकिन दुनिया के हालात पर कोई असर नहीं डाल सकते और न ख़ुदा के तराज़ू में ही कोई वज़न हासिल कर सकते हैं। अगर आपको दिखावटी नहीं बल्कि हक़ीक़ी तक़वा और एहसान चाहिए हो जो दुनिया में दीन का बोलबाला करने और आख़िरत में भलाई का पलड़ा झुकाने के लिए ज़रूरी है तो मेरी इस बात को अच्छी तरह ज़ेहन में बैठा लीजिए कि ऊपर की ये दोनों मंज़िलें कभी नहीं उठ सकतीं जब तक ईमान की बुनियाद मज़बूत न हो जाए और उसकी मज़बूती का सुबूत अमली इस्लाम यानी इताअत और फ़रमाँबरदारी के कामों से न मिल जाए।

तक़वा

तक़वा की बात करने से पहले यह समझने की कोशिश कीजिए कि तक़वा है क्या चीज़। तक़वा हक़ीक़त में किसी शक्ल व बनावट और किसी ख़ास तरह से ज़िन्दगी गुज़ारने का नाम नहीं है बल्कि वह नफ़्स की उस कैफ़ियत (मनोस्थिति) का नाम है जो ख़ुदातरसी और ज़िम्मेदारी के एहसास से पैदा होती है और ज़िन्दगी के हर पहलू में दिखाई देती है। वास्तविक तक़वा यह है कि इनसान के दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ हो। बन्दगी का शऊर हो। ख़ुदा के सामने अपनी ज़िम्मेदारी जवाबदेही का एहसास हो। और इस बात की ज़्यादा समझ मौजूद हो कि दुनिया एक इम्तिहान की जगह है जहाँ एक उम्र की मुहलत देकर ख़ुदा ने मुझे भेजा है और आख़िरत में मेरे भविष्य का फ़ैसला बिल्कुल इस चीज़ पर टिका है कि मैं इस दिए हुए वक़्त के अन्दर इस इम्तिहान की जगह में अपनी ताक़त और क़ाबिलियतों को किस तरह इस्तेमाल करता हूँ, इस सरो-सामान का किस तरह इस्तेमाल करता हूँ जो ख़ुदा की मरज़ी के तहत मुझे दिया गया है और उन इनसानों के साथ क्या मामला करता हूँ जिनसे क़ज़ाए-इलाही ने विभिन्न हैसियतों से मेरी ज़िन्दगी जोड़ दी है। यह एहसास और शऊर जिस शख़्स के अन्दर पैदा हो जाए उसका ज़मीर जाग जाता है। उसकी दीनी हिस (महसूस करने की क़ुव्वत) तेज़ हो जाती है। उसको हर वह चीज़ खटकने लगती है जो ख़ुदा की मरज़ी

के ख़िलाफ़ हो। वह अपने नफ़्स का आप जायज़ा लेने लगता है कि मेरे अन्दर किस क़िस्म के रुझान व ख़ाहिशात पनप रहे हैं। वह अपनी ज़िन्दगी की ख़ुद पड़ताल करने लगता है कि मैं किन कामों में अपना वक़्त और अपनी ताक़त ख़र्च कर रहा हूँ। वह ज़ाहिरी प्रतिबन्धों से तो दूर, शक पैदा करनेवाले कामों में भी शामिल होते हुए ख़ुद-ब-ख़ुद झिझकने लगता है। उसके फ़र्ज़ का एहसास उसे मजबूर कर देता है कि तमाम कामों को पूरी फ़रमाँबरदारी के साथ पूरा करे। उसकी ख़ुदा-तरसी हर उस मौक़े पर उसके क़दम में कँपकपाहट पैदा कर देती है जहाँ अल्लाह की हदों से पार जाने का अन्देशा हो। अल्लाह के हक़ और बन्दों के हक़ को पूरा करना आपसे आप उसकी आदत बन जाती है और इस ख़्याल से भी उसका ज़मीर काँप उठता है कि कहीं उससे कोई बात हक़ के ख़िलाफ़ न हो जाए। यह कैफ़ियत किसी एक शक्ल या किसी ख़ास दायरे में ही दिखाई नहीं देती बल्कि आदमी की पूरी सोच और उसकी ज़िन्दगी के तमाम कारनामों में दिखाई देती है और उसके असर से एक ऐसी हमवार और एक-रंग सीरत पैदा होती है कि जिसमें आप हर पहलू से एक ही तरह की पाकीज़गी व सफ़ाई पाएँगे। इसके विपरीत जहाँ बस उस चीज़ का नाम रख लिया गया है कि आदमी कुछ ख़ास शक्लों की पाबन्दी और ख़ास तरीक़ों की पैरवी को अपना ले और बनावटी तौर पर अपने आपको एक ऐसे साँचे में ढाल ले जिसकी पैमाइश की जा सकती हो वहाँ आप देखेंगे कि वह कुछ तक़वे की शक्लें जो सिखा दी गई हैं उनकी पाबन्दी तो बहुत एहतिमाम के साथ हो रही है मगर इसके साथ ज़िन्दगी के दूसरे पहलुओं में वह अख़लाक़ वह सोच और वह अमल भी ज़ाहिर हो रहे हैं जो तक़वा के मक़ाम से तो दूर, ईमान के शुरुआती तक़ाज़ों से भी तआल्लुक़ नहीं रखते। यानी हज़रत मसीह (अलैहि॰) की मिसाल देनेवाली ज़बान में मच्छर छाने जा रहे हैं और ऊँट बेतकल्लुफ़ी के साथ निगले जा रहे हैं।

हक़ीक़ी तक़वा और बनावटी तक़वा के इस फ़र्क़ को यूँ समझिए कि एक शख़्स तो वह है जिसके अन्दर पाकीज़गी और सफ़ाई की महसूस करने की क़ुव्वत मौजूद है और पाकीज़गी का ज़ौक़ पाया जाता है। ऐसा शख़्स गन्दगी

से नफ़रत करेगा चाहे वह जिस शक्ल में भी हो और पाकीज़गी ख़ुद ही अपना लेगा चाहे इसके प्रदर्शन का अहाता न हो सकता हो। इसके विपरीत दूसरा शख़्स है जिसके अन्दर पाकीज़गी महसूस करने की क़ुव्वत मौजूद नहीं है मगर वह गन्दगियों और पाकीज़गी की एक लिस्ट लिए फिरता है जो कहीं से उसने नक़्ल कर ली है। यह शख़्स उन गन्दगियों से तो सख़्त परहेज़ करेगा जो उसने लिस्ट में लिखी हुई पाई हैं, मगर ऐसी बेशुमार घिनौनी चीज़ों में लिप्त रहेगा जो उन गन्दगियों से कहीं अधिक नापाक होंगी जिनसे वह बच रहा है, सिर्फ़ इस वजह से कि वह इस लिस्ट में दर्ज होने से रह गईं। यह फ़र्क़ जो मैं आपसे अर्ज़ कर रहा हूँ ये महज़ एक नज़री फ़र्क़ नहीं है, बल्कि आप इसको अपनी आँखों से उन हज़रात की ज़िन्दगियों में देख सकते हैं जिनके तक़वा की धूम मची हुई है। एक तरफ़ उनके यहाँ मज़हबी क़ानून की छोटी-छोटी बातों का ऐसा एहतिमाम है कि दाढ़ी एक ख़ास मिक़दार से कुछ भी कम हो तो फ़िस्क़ का फ़ैसला सुना दिया जाता है। पांयचे टख़ने से ज़रा नीचे हो जाएँ तो जहन्नम की वईद सुना दी जाती है। अपने मसलक के उलमाओं के मज़हबी हुक्मों से हटना उनके नज़दीक जैसे दीन से निकल जाना है। लेकिन दूसरी तरफ़ दीन के उसूल और कुल्लियात से उनकी ग़फ़लत इस हद तक पहुँची हुई है कि मुसलमानों की पूरी ज़िन्दगी का दारोमदार उन्होंने रुख़सतों और सियासी मसलहतों पर रख दिया है। दीन के क़ायम करने की कोशिश से बचाव की बेशुमार राहें उन्होंने निकाल रखी हैं। कुफ़्र के ग़लबे के तहत "इस्लामी ज़िन्दगी" के नक़्शे बनाने में ही उनकी सारी मेहनतें और कोशिशें ख़र्च हो रही हैं और उन्हीं की ग़लत रहनुमाई ने मुसलमानों को इस चीज़ पर मुत्मइन किया है कि एक ग़ैर इस्लामी निज़ाम के अन्दर रहते हुए बल्कि उसकी ख़िदमत करते हुए भी एक महदूद दायरे में मज़हबी ज़िन्दगी गुज़ारकर वे दीन के सारे तक़ाज़े पूरे कर सकते हैं, इससे आगे कुछ नहीं चाहिए जिसके लिए वे कोशिश करें। फिर इससे भी ज़्यादा अफ़सोसनाक बात यह है कि अगर कोई उनके सामने दीन की अस्ली ज़रूरतें पेश करे और दीन को क़ायम करने की कोशिश की तरफ़ ध्यान दिलाए तो सिर्फ़ यही नहीं कि वे उसकी बात सुनी-अनसुनी कर देते हैं बल्कि

कोई हीला, कोई बहाना और कोई चाल ऐसी नहीं छोड़ते जो इस काम से ख़ुद बचने और मुसलमानों को बचाने के लिए इस्तेमाल न करें। इसपर भी उनके तक़वा पर कोई आँच नहीं आती और न मज़हबी समझ रखनेवालों में से किसी को यह शक होता है कि उनके तक़वा में कोई कसर है। इसी तरह हक़ीक़ी और बनावटी तक़वा का फ़र्क़ बेशुमार शक्लों में दिखाई देता है। मगर आप उसे तब ही महसूस कर सकते हैं कि तक़वा का अस्ली तसव्वुर आपके ज़ेहन में साफ़ तौर पर मौजूद हो।

मेरी इन बातों का मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि शक्ल-सूरत, लिबास और ज़िन्दगी बसर करने के ज़ाहिरी पहलुओं से जुड़े जो आदाब व हुक्म हदीस से साबित हैं मैं उनको हल्का साबित करना चाहता हूँ या उन्हें ग़ैर ज़रूरी क़रार देता हूँ। ख़ुदा की पनाह इससे कि मेरे दिल में ऐसा कोई ख़याल हो। दरअसल जो कुछ मैं आपको याद कराना चाहता हूँ वह यह है कि अस्ल चीज़ तक़वा है, न कि यह दिखावा।

तक़वा की हक़ीक़त जिसके अन्दर पैदा होगी उसकी पूरी ज़िन्दगी आसान और एक समान इस्लामी ज़िन्दगी बनेगी। इस्लाम अपनी पूरी व्यापकता के साथ उसके ख़यालात में, उसके जज़बात व रुझानात में, उसके मिज़ाज में, उसके वक़्त के बँटवारे और उसकी क़ुव्वतों के ख़र्च में, उसकी कोशिशों की राहों में, उसकी ज़िन्दगी समाज में उसकी कमाई और ख़र्च में, यानी उसकी दुनिया की ज़िन्दगी के सारे पहलुओं में धीरे-धीरे दिखाई देने लगेगा। इसके ख़िलाफ़ अगर दिखावे को हक़ीक़त पर अहमियत दी जाएगी और उनपर बेजा ज़ोर दिया जाएगा और हक़ीक़ी तक़वा के बीज बोने और उनको सींचने के बग़ैर बनावटी तौर पर कुछ दिखावटी हुक्मों को पूरा किया जाएगा तो नतीजे वही कुछ होंगे जिनका मैंने अभी आपसे ज़िक्र किया है। पहली चीज़ लम्बे समय और सब्र की माँग करती है जो एक वक़्त के गुज़रने के बाद ही हरियाली लाती है, जिस तरह बीज से पेड़ पैदा होने और फल-फूल लाने में काफ़ी देर लगा करती है। इसी लिए सतही मिज़ाज के लोग इससे उकताते हैं। इसके ख़िलाफ़ दूसरी चीज़ जल्दी और आसानी से पैदा कर ली जाती है, जैसे एक लकड़ी में पत्ते, फल और फूल बाँधकर पेड़ की-सी शक्ल

दे दी जाए। यही वजह है कि तक़वा की पैदावार का यही तरीक़ा आज पसंद किया जा सकता है। लेकिन ज़ाहिर है कि जो उम्मीदें एक क़ुदरती पेड़ से पूरी होती हैं वह इस क़िस्म के बनावटी पेड़ से तो कभी पूरी नहीं हो सकतीं।

एहसान

अब एहसान को लीजिए जो इस्लाम की सबसे ऊँची मंज़िल है। एहसान दरअसल अल्लाह और उसके रसूल और उसके दीन के साथ उस क़ल्बी लगाव, उस गहरी मुहब्बत, उस सच्ची वफ़ादारी और फ़िदा हो जाने व जाँनिसारी का नाम है जो मुसलामनों को इस्लाम के लिए मिटा दे। तक़वे का बुनियादी तसव्वुर खुदा का ख़ौफ़ है जो इनसान को उसकी नाराज़ी से बचने पर आमादा करे और एहसान का बुनियादी तसव्वुर खुदा की मुहब्बत है जो आदमी को उसकी खुशनूदी हासिल करने के लिए उभारे। इन दोनों चीज़ों के फ़र्क़ को एक मिसाल से यूँ समझिए कि हुकूमत के मुलाज़िमों में से एक तो वे लोग हैं जो अपने फ़र्ज़ को तन-मन से पूरा करते हैं और तमाम ख़िदमतें ठीक-ठीक करते हैं जो उनके सुपुर्द की गई हैं। तमाम नियमों और क़ायदों की पूरी पाबन्दी करते हैं और कोई काम ऐसा नहीं करते जिसपर हुकूमत को एतिराज़ हो। दूसरा तबक़ा उन सच्चे वफ़ादारों और जाँनिसारों का होता है जो दिल और जान से अपने आपको हुकूमत के हवाले कर देते हैं। ये सिर्फ़ वही काम नहीं करते हैं जो उनके सुपुर्द किए गए हैं बल्कि उनके दिलों को हमेशा यह फ़िक्र लगी रहती है कि सल्तनत के फ़ायदे को किस तरह ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाया जाए। इस धुन में वे फ़र्ज़ और ज़रूरत से ज़्यादा काम करते हैं। सल्तनत पर कोई आँच आए तो वे जान व माल और औलाद सब कुछ क़ुरबान करने के लिए तैयार हो जाते हैं। क़ानून के ख़िलाफ़ कुछ हो तो उनके दिल को चोट लगती है। कहीं बग़ावत के आसार पाए जाएँ तो वे बेचैन हो जाते हैं और उसे ख़त्म करने में जान लड़ा देते हैं। जानबूझकर खुद सल्तनत को नुक़सान पहुँचाना तो दूर, उसके फ़ायदे को नुक़सान पहुँचते देखना भी उनको बरदाश्त नहीं होता और इस ख़राबी को दूर करने में वे कोई कसर बाक़ी नहीं छोड़ते। उनकी दिली ख़ाहिश यह होती है कि दुनिया में बस उनकी सल्तनत का ही बोलबाला हो और ज़मीन का कोई हिस्सा ऐसा

बाक़ी न रह जाए जहाँ उसका परचम न लहराए। इन दोनों में से पहली क़िस्म के लोग उस हुकूमत के मुत्तक़ी होते हैं और दूसरी क़िस्म के लोग उसके मुहसिन। अगरचे तरक़्क़ियाँ मुत्तक़ीन को भी मिलती हैं और उनके नाम अच्छे मुलाज़िमों की लिस्ट में ही लिखे जाते हैं मगर जो ऊँचाइयाँ मुहसिनीन के लिए हैं उनमें कोई दूसरा उनका शरीक नहीं होता। बस इसी मिसाल पर इस्लाम के मुत्तक़ियों और मुहसिनों का भी अंदाज़ा लगा लीजिए। अगरचे मुत्तक़ीन भी क़ाबिले-क़द्र और क़ाबिले-एतिमाद लोग हैं, मगर इस्लाम की अस्ली ताक़त मुहसिनों का गरोह है। अस्ली काम जो इस्लाम चाहता है कि दुनिया में हो वे इसी गरोह से पूरा हो सकता है।

एहसान की इस हक़ीक़त को समझ लेने के बाद आप ख़ुद ही अन्दाज़ा कर लें कि जो लोग अपनी आँखों से ख़ुदा के दीन को कुफ़्र से मग़लूब देखें, जिनके सामने अल्लाह की हदों को पामाल ही नहीं बल्कि ये हदें जैसे हैं ही नहीं ऐसा कर दिया जाए, ख़ुदा का क़ानून अमलन ही नहीं बल्कि बाज़ाबता रद्द कर दिया जाए, ख़ुदा की ज़मीन पर ख़ुदा का नहीं बल्कि उसके बाग़ियों का बोल-बाला हो रहा हो, कुफ़्र के निज़ाम के दख़ल से न सिर्फ़ आम इनसानी समाज में अख़लाक़ी और सांस्कृतिक बिगाड़ पैदा हो बल्कि ख़ुद उम्मते-मुस्लिमा भी निहायत सुरअत के साथ अख़लाक़ी व अमली गुमराहियों में पड़ रही हो, और यह सब कुछ देखकर भी उनके दिलों में न कोई बेचैनी पैदा हो, न इस हालत को बदलने के लिए कोई जज़्बा भड़के, बल्कि इसके बरअक्स वे अपने नफ़्स को और आम मुसलमानों को ग़ैर इस्लामी निज़ाम के ग़लबे से उसूलन व अमलन मुत्मइन कर दें, उनकी गिनती आख़िर मुहसिनीन में किस तरह हो सकती है? इस अज़ीम जुर्म के साथ सिर्फ़ यह बात उन्हें एहसान के ऊँचे मक़ाम पर कैसे बैठा सकती है कि वे चाश्त और इशराक़ और तहज्जुद की नफ़्लें पढ़ते रहे, ज़िक्र, ख़ुदा का ध्यान और मुराक़बे करते रहे, हदीस और क़ुरआन की तालीम देते रहे, जुज़यात फ़िक़्ह की पाबन्दी और छोटी-छोटी सुन्नतों को सख़्ती से पूरा करते रहे और नफ़्स के तज़किए की ख़ानक़ाहों में दीनदारी का फ़न सिखाते रहे, जिसमें हदीस व इल्म और तसव्वुफ़ की बारीकियाँ तो सारी मौजूद थीं मगर एक चीज़ न थी

तो वह हक़ीक़ी दीनदारी, जो "सरदाद नदाद दस्त दर दस्त यज़ीद" (यानी सिर दे दिया, मगर अपना हाथ यज़ीद के हाथ में नहीं दिया।) की कैफ़ियत (मनोस्थिति) पैदा करे और "बाज़ी अगर्चे पा ना सका, सर तो खो सका" के वफ़ादारी के मक़ाम पर पहुँचा दे। आप दुनिया की रियासतों और क़ौमों में भी वफ़ादार और ग़ैर वफ़ादार की इतनी तमीज़ ज़रूर पाएँगे कि अगर मुल्क में बग़ावत हो जाए या मुल्क के किसी हिस्से पर दुश्मन का क़ब्ज़ा हो जाए तो बाग़ियों और दुश्मनों के क़ब्ज़े को जो लोग जायज़ मान लें या उनके अधिकार को मानने पर राज़ी हो जाएँ और उनके साथ आपसी मेल-मिलाप कर लें या उनकी सरपरस्ती में कोई ऐसा निज़ाम बनाएँ जिसमें अस्ली सत्ता की बागडोर उन्हीं के हाथों में रहे और कुछ कम अहमियत, अधिकार और हक़ उन्हें भी मिल जाएँ, तो ऐसे लोगों को कोई रियासत और कोई क़ौम अपना वफ़ादार मानने के लिस तैयार नहीं होती। चाहे वे क़ौमी फ़ैशन के कैसे ही सख़्त पाबन्द और कुछ ख़ास मामलों में क़ौमी क़ानून के कितने ही बड़े पैरवी क़रनेवाले हों। आज आपके सामने ज़िन्दा मिसालें मौजूद हैं कि जो मुल्क जर्मनी के क़ब्ज़े से निकले हैं वहाँ उन लोगों के साथ क्या मामला हो रहा है, जिन्होंने जर्मन क़ब्ज़े के ज़माने में समर्थन और आपसी मेल-मिलाप की राह आपनाई थी। उन सब रियासतों और क़ौमों के पास वफ़ादारी को जाँचने का एक ही मेयार है और वह यह है कि किस शख़्स नें दुश्मन के क़ब्ज़े का विरोध किस हद तक किया, उसको मिटाने के लिए क्या काम किया और उस सत्ता को वापस लाने के लिए क्या कोशिश की जिसकी वफ़ादारी का वह दावेदार था? फिर क्या मआज़ अल्लाह, ख़ुदा के मुताल्लिक़ आपका यह गुमान है कि वह अपने वफ़ादारों को पहचानने की इतनी भी तमीज़ नहीं रखता जितनी दुनिया के कम अक़्ल इनसानों में पाई जाती है? क्या आप समझते हैं कि वह बस दाढ़ियों का बढ़ना, टख़नों और पायंचों का फ़ासला, तस्बीहों का पढ़ना और वज़ीफ़ों व नफ़्लों और ध्यान लगाकर ज़िक्र करने में लगे रहना और ऐसी ही कुछ और चीज़ें देखकर ही धोखा खा जाएगा कि आप उसके सच्चे वफ़ादार और जाँनिसार हैं?

ग़लतफ़हमियाँ

हज़रात, अब मैं एक आख़िरी बात कहकर अपनी तक़रीर ख़त्म करूँगा। आम मुसलमानों के ज़ेहन पर मुद्दतों के ग़लत तसव्वुरात की वजह से छोटे-छोटे कामों और ज़ाहिर बातों की अहमियत कुछ इस तरह छा गई है कि दीन के उसूल व कुल्लियात व दीनदारी और अख़लाक़े-इस्लामी के हक़ीक़ी जौहर की तरफ़ चाहे कितना ही ध्यान दिलाया जाए मगर लोगों के दिमाग़ हिर-फिर कर उन्हीं छोटे-छोटे मसलों और ज़रा-ज़रा-सी ज़ाहिरी चीज़ों में अटककर रह जाते हैं जिन्हें अस्ल दीन बनाकर रख दिया गया है। इस वबाए-आम के असरात खुद हमारे बहुत-से साथियों और हमदर्दों में भी पाए जाते हैं। मैं अपना पूरा ज़ोर यह समझाने में ख़र्च करता रहा हूँ कि दीन की हक़ीक़त क्या है, उसमें अस्ल अहमियत किन चीज़ों की है और उसमें बेहतरीन क्या है और बेकार क्या है? लेकिन इन सारी कोशिशों के बाद जब देखता हूँ यही देखता हूँ कि वही ज़ाहिर-परस्ती और वही उसूल से बढ़कर अमल से जुड़े सतही मसलों की अहमियत दिमाग़ों पर हावी है। आज तीन रोज़ से मेरे पास परचियों की भरमार हो रही है जिसमें सारी माँग बस यह की गई है कि जमाअत के लोगों की दाढ़ियाँ बढ़वाई जाएँ, पायंचे टख़नों से ऊँचे कराए जाएँ। इसके अलावा कुछ छोटे-छोटे कामों का एहतिमाम कराया जाए। इसके अलावा कुछ लोगों के इस ख़याल का भी मुझे इल्म हुआ कि उन्हें जमाअत में इस चीज़ की बड़ी कमी महसूस होती है जिसको वे "रूहानियत" कहते हैं। मगर शायद वे खुद नहीं बता सकते कि ये रूहानियत आख़िर है क्या चीज़? इसी बिना पर उनकी राय यह है कि मक़सद और काम करने का तरीक़ा तो इस जमाअत का इख़्तियार किया जाए और नफ़्स के तज़किए और रूहानी तरबियत के लिए ख़ानक़ाहों की तरफ़ रुख़ किया जाए। ये सारी बातें साफ़ बताती हैं कि अभी तक हमारी तमाम कोशिशों के बावुजूद लोगों में दीन की समझ पैदा नहीं हुई है। मैं अभी आपके सामने ईमान, इस्लाम, तक़वा, एहसान की जो तशरीह (व्याख्या) कर चुका हूँ उसमें अगर कोई चीज़ क़ुरआन और हदीस की तालीम से बढ़ा-घटाकर मैंने खुद सामने रख दी हो तो आप बे-तकल्लुफ़

उसकी निशानदेही कर दें। लेकिन अगर आप इस बात से सहमत हैं कि अल्लाह की किताब और अल्लाह के रसूल की सुन्नत के मुताबिक़ इन चार चीज़ों की हक़ीक़त है तो फिर ख़ुद ही सोचिए कि जहाँ ईमान के तक़ाज़े भी पूरी तरह दुरुस्त न हों और जहाँ तक़्वा और एहसान की जड़ ही न पाई जाती हो, वहाँ आख़िर कौन-सी रूहानियत पाई जा सकती है जिसे आप तलाश करने जा रहे हैं। रहे वे छोटे-छोटे मज़हबी काम जिनको आपने दीन के पहली माँगों में शुमार कर रखा है तो उनका हक़ीक़ी मक़ाम मैं आपके सामने फिर एक बार समझा देता हूँ ताकि मैं अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जाऊँ।

सबसे पहले ठंडे दिल से इस सवाल पर ग़ौर कीजिए कि अल्लाह तआला ने अपने रसूल दुनिया में किस ग़रज़ के लिए भेजे हैं? दुनिया में आख़िर किस चीज़ की कमी थी? क्या ख़राबी पाई जाती थी जिसे दूर करने के लिए अंबिया भेजने की ज़रूरत पेश आई? क्या वह यह थी कि लोग दाढ़ियाँ न रखते थे और उन्हीं के रखवाने के लिए रसूल भेजे गए? या ये लोग टख़ने ढाँके रहते थे और अंबिया के ज़रिए से उन्हें खुलवाना मक़सद था? या वे चन्द सुन्नतें जिनके एहतिमाम की आप लोगों में बहुत चर्चा है, दुनिया में जारी करने के लिए अंबिया की ज़रूरत थी? इन सवालों पर आप ग़ौर करेंगे तो ख़ुद ही कह देंगे कि न अस्ल ख़राबियाँ यह थीं और न अंबिया को भेजे जाने का अस्ल मक़सद यह था। फिर सवाल यह है कि वे अस्ल ख़राबियाँ क्या थीं जिन्हें दूर करना ज़रूरी था और वे हक़ीक़ी भलाइयाँ क्या थीं जिन्हें क़ायम करने की ज़रूरत थी? इसका जवाब आप इसके सिवा और क्या दे सकते हैं कि एक अल्लाह की इताअत और बन्दगी से इनकार, अपने बनाए हुए उसूलों और क़ानूनों की पैरवी और ख़ुदा के सामने ज़िम्मेदारी व जवाबदेही का एहसास न होना– ये थीं वे अस्ल ख़राबियाँ जो दुनिया में दिखाई देने लगी थीं। इन्हीं की वजह से अख़लाक में ख़राबियाँ पैदा हुईं, ज़िन्दगी के ग़लत उसूल पैदा हुए और ज़मीन में बिगाड़ पैदा हो गया। फिर अंबिया (अलैहिस्सलाम) इस मक़सद के लिए भेजे गए कि इनसानों में ख़ुदा की बन्दगी, वफ़ादारी और उसके सामने अपनी जवाबदेही का एहसास पैदा

किया जाए जिनसे ख़ैर और भलाई उभरे और शर व फ़साद दबे। यही एक मक़सद तमाम अंबिया के भेजे जाने का था और आख़िरकार इसी मक़सद के लिए मुहम्मद (सल्ल॰) भेजे गए।

अब देखिए कि इस मक़सद को पूरा करने के लिए मुहम्मद (सल्ल॰) ने किस तरतीब और सिलसिले (क्रम) के साथ काम किया। सबसे पहले आप (सल्ल॰) ने ईमान की दावत दी और उसको विस्तृत बुनियादों पर पुख़्ता और मज़बूत किया। फिर इस ईमान के तक़ाज़ों के मुताबिक़ आहिस्ता-आहिस्ता अपनी तालीम और तरबियत के ज़रिए से ईमानवालों में अमली इताअत व फ़रमाँबरदारी (इस्लाम), अख़लाक़ी पकीज़गी (तक़वा) और ख़ुदा की गहरी मुहब्बत व वफ़ादारी (एहसान) की ख़ूबियाँ पैदा कीं। फिर इन मुख़लिस मोमिनों की एकजुट कोशिश व जुहद से जाहिलियत के पुराने बिगड़े हुए निज़ाम को मिटाया और उसकी जगह ख़ुदा के क़ानून के अख़लाक़ी व सांस्कृतिक उसूलों पर एक भलाई का निज़ाम क़ायम कर दिया। इस तरह जब लोग अपने दिलो-दिमाग़, नफ़्स व अख़लाक़, सोच व आमाल ग़र्ज़ जुम्ला हैसियात से वाक़ई मुस्लिम, मुत्तक़ी और मुहसिन बन गए और उस काम में लग गए जो अल्लाह तआला के वफ़ादारों को चाहिए था, तब आप (सल्ल॰) ने उनको बताना शुरू किया कि शक्ल-सूरत, लिबास, खाने-पीने, रहने-सहने उठने-बैठने और दूसरे ज़ाहिरी बरताव में वे मुहज़्ज़ब आदाब व तौर-तरीक़े कौन-से हैं जो मुत्तक़ियों पर अच्छे लगते हैं। जैसे पहले कच्चे ताँबे को कुन्दन बनाया फिर उसपर अशरफ़ी का ठप्पा लगाया। पहले सिपाही तैयार किए फिर उन्हें वर्दी पहनाई। यही इस काम की तरतीब है जो क़ुरआन और हदीस के गहरे मुताले (अध्ययन) से साफ़ नज़र आती है। अगर सुन्नतों पर अमल नाम है उस तर्ज़े अमल का जो नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह तआला की मरज़ी पूरी करने के लिए हिदायत इलाही के तहत इख़्तियार किया था तो यक़ीनन ये सुन्नत की पैरवी नहीं, बल्कि उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी है कि हक़ीक़ी मोमिन, मुस्लिम, मुत्तक़ी और मुहसिन बनाए बग़ैर लोगों को मुत्तक़ियों के ज़ाहिरी साँचे में ढालने की कोशिश की जाए और उन से मुहसिनों के कुछ मशहूर व मक़बूल कामों की नक़्ल उतारी जाए। ये सीसे और ताँबे के टुकड़ों पर

अशरफ़ी का ठप्पा लगाकर बाज़ार में उनको चला देना और सिपाहियत, वफ़ादारी और जाँनिसारी पैदा किए बग़ैर निरे वर्दीधारी नुमाइशी सिपाहियों को मैदान में ला खड़ा करना मेरे नज़दीक तो एक खुली हुई जालसाज़ी है, और इसी जालसाज़ी का नतीजा है कि न बाज़ार में आपकी इन जाली अशरफ़ियों की कोई क़ीमत उठती है और न मैदान में आपके इन दिखावटी सिपाहियों की भीड़ से कोई जंग जीती जाती है।

फिर आप क्या समझते हैं कि खुदा के यहाँ अस्ली क़द्र किस चीज़ की है? फ़र्ज़ कीजिए कि एक शख़्स सच्चा ईमान रखता है, फ़र्ज़ अदा करता है, नेक अख़लाक़ रखता है, अल्लाह की तय की हुई हदों का पाबन्द है और ख़ुदा की वफ़ादारी और जाँनिसारी का हक़ अदा कर देता है, मगर ज़ाहिरी फ़ैशन के एतिबार से नाक़िस और ज़ाहिरी तहज़ीब के मेयार से गिरा हुआ है। उसकी हैसियत ज़्यादा से ज़्यादा बस यही तो होगी कि एक अच्छा मुलाज़िम है मगर ज़रा बदतमीज़ है। मुमकिन है कि इस बदतमीज़ी की वजह से उसको ऊँचा मर्तबा हासिल न हो सके, मगर क्या आप समझते हैं कि इस क़ुसूर में उसकी वफ़ादारी का हिस्सा इसलिए उसे जहन्नम में झोंक देगा कि वह अच्छी शक्ल सूरत और अच्छे तौर तरीक़ेवाला न था? फ़र्ज़ कीजिए कि एक दूसरा शख़्स है जो बेहतरीन शरई फ़ैशन में रहता है और तहज़ीब के आदाब में कमाल दर्जा रखता है। मगर उसकी वफ़ादारी में खोट है, उसके फ़र्ज़ अदा करने में कमी है, उसकी ईमान की ग़ैरत में ख़ामी है। आप क्या अन्दाज़ा करते हैं कि इस कमी के साथ उस ज़ाहिरी कमाल की हद से हद कितनी क़द्र खुदा के यहाँ होगी? यह मसला तो कोई गहरा और पेचीदा क़ानूनी मसला नहीं है जिसे समझने के लिए किताबें देखने की ज़रूरत हो। महज़ आम अक़्ल ही से हर आदमी जान सकता है कि उन दोनों चीज़ों में से असली क़द्र की हक़दार कौन-सी चीज़ है। दुनिया के कम अक़्ल लोग भी इतनी तमीज़ ज़रूर रखते हैं कि हक़ीक़त में जो चीज़ क़ाबिले-क़द्र है उसमें और मामूली ख़ूबियों में फ़र्क़ कर सकें। ये अंग्रेज़ी हुकूमत आपके सामने मौजूद है। ये लोग जैसे कुछ फ़ैशनपरस्त हैं और ज़ाहिरी आदाब व तौर-तरीक़ों पर जिस तरह जान देते हैं उसका हाल आपको मालूम है। लेकिन

आप जानते हैं उनके यहाँ अस्ली क़द्र किस चीज़ की है? जो फ़ौजी अफ़सर उनकी सल्तनत का झंडा बुलन्द करने में अपने दिलो-दिमाग़ और जिस्मो-जान की सारी ताक़त ख़र्च कर दे और फ़ैसले के वक़्त पर कोई क़ुरबानी देने से पीछे न हटे वह उनकी नज़र में चाहे वह कितना ही उजड और गँवार हो, कई-कई दिन शेव न करता हो, बेढंगा लिबास पहनता हो, खाने-पीने की थोड़ी भी तमीज़ न रखता हो, नाचने का हुनर न जानता हो, मगर सारी कमियों के बावुजूद वह उसको सर आँखों पर बैठाएँगे और उसे तरक़्क़ी के ऊँचे पद देंगे, इसके उलट कि जो शख़्स फ़ैशन, तहज़ीब, तमीज़दारी और सोसायटी के तौर-तरीक़ों को अपनाए हुए हो लेकिन उसकी वफ़ादारी व जाँनिसारी में कमी हो और काम के वक़्त अपनी भलाई का ज़्यादा लिहाज़ कर जाए, उसे वे कोई इज़्ज़त का मक़ाम देना तो दूर शायद उसका कोर्ट मार्शल करने में भी हिचकिचाएँगे नहीं। यह जब दुनिया के कम अक़्ल इनसानों का हाल है तो अपने ख़ुदा के बारे में आपका क्या गुमान है? क्या वह सोने और ताँबे में तमीज़ करने की बजाय महज़ ऊपरी हिस्से पर अशरफ़ी का ठप्पा देखकर अशरफ़ी की क़ीमत और पैसे का ठप्पा देखकर पैसे की क़ीमत लगा देगा?

मेरी इस गुज़ारिश को ये मानी न दिए जाएँ कि मैं ज़ाहिरी मुहसिनों की अहमियत घटाना चाहता हूँ या उन दीनी हुक्मों को पूरा करना ज़रूरी नहीं समझता रहा हूँ जो ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलुओं के सुधार और दुरुस्ती के बारे में दिए गए हैं। हक़ीक़त में, मैं तो इसका क़ायल हूँ कि मोमिन बन्दों को हर उस हुक्म को पूरा करना चाहिए जो ख़ुदा और रसूल ने दिया हो और ये भी मानता हूँ कि दीन इनसान के अन्दरूनी और ज़ाहिरी दोनों को सुधारना चहता है। लेकिन जो चीज़ मैं आपको समझाना चाहता हूँ वह यह है कि बेहतरीन चीज़ अन्दरून है, न कि ज़ाहिर। पहले अन्दरून में हक़ीक़त का जौहर पैदा करने की फ़िक्र कीजिए, फिर ज़ाहिर को हक़ीक़त के मुताबिक़ ढालिए। आपको सबसे बढ़कर और सबसे पहले उन ख़ूबियों की तरफ़ ध्यान देना चाहिए जो अल्लाह के यहाँ अस्ल मक़सूद थीं। ज़ाहिर की सजावट पहले तो इन ख़ूबियों के नतीजे में स्वाभाविक तौर पर ख़ुद ही होती चली जाएगी

और अगर इसमें कुछ कसर रह जाए तो आख़िरी मरहलों में इसका एहतिमाम भी किया जा सकता है।

दोस्तो और साथियो! मैंने बीमारी और कमज़ोरी के बावुजूद आज ये लम्बी तक़रीर आपके सामने इसलिए की है कि मैं हक़ के काम को पूरी वज़ाहत के साथ आप तक पहुँचाकर ख़ुदा के दरबार में ज़िम्मेदारी से बरी होना चाहता हूँ। ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं, कोई नहीं जानता कि कब उसकी मुहलत का वक़्त, उसकी उम्र पूरी हो जाए। इसलिए मैं ज़रूरी समझता हूँ कि हक़ को पहुँचाने की जो ज़िम्मेदारी मुझपर है उससे बरी हो जाऊँ। अगर कोई और काम और वज़ाहत की ज़रूरत हो तो पूछ लीजिए। अगर मैंने कोई बात हक़ के ख़िलाफ़ बयान की हो तो उसको रद्द कर दीजिए। लेकिन अगर मैंने ठीक-ठीक हक़ आप तक पहुँचा दिया है तो आप भी उसके गवाह रहें और ख़ुदा भी गवाह हो। मैं दुआ करता हूँ कि अल्लाह मुझे और आपको, सबको अपने दीन की सही समझ बख़्शे और उस समझ के मुताबिक़ दीन के सारे तक़ाज़े और माँगें पूरी करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए।

आमीन!